

हरी-भरी जिन्दगी पर कहर बरपाता राज्य

(सलवा जुड़ूम के तौर-तरीकों पर एक नजर)

बी.डी. दमयन्ती

(हिन्दी अनुवाद - अमन)

प्रकाशकों की तरफ से दो शब्द...

दण्डकारण्य में काम करने वाली लेखिका व कार्यकर्ता बी.डी. दमयन्ती ने सलवा जुड़ूम से उत्पीड़ित बस्तर की आदिवासी जनता के अनुभव को प्रत्यक्ष देखा। वर्ष 2006 के जुलाई महीने में उन्होंने दक्षिण बस्तर के कोंटा इलाके में 10 गांवों का दौरा किया। सलवा जुड़ूमियों का शिकार जनता से प्रत्यक्ष बात की। उसके आधार पर उन्होंने मार्च 2007 में यह छोटी-सी किताब लिखी थी। तेलुगु में लिखी गई यह किताब सबसे पहले जनवरी 2008 में 'विरसम' द्वारा प्रकाशित की गई थी। इसे मार्च 2008 में हिंदी में अनूदित किया गया। इसी सिलसिले में बी.डी. दमयन्ती ने मई 2008 में पश्चिम बस्तर के इलाकों का दौरा कर खासकर महिलाओं पर हुए सलवा जुड़ूम अत्याचारों का जायजा लिया। उसके आधार पर जून 2008 में फिर एक किताब (जलते जूझ) लिखी जिसका हिंदी में अनुवाद करना बाकी है।

शोषक सरकारों और उनकी चापलूसी करने वाली कार्पोरेट मीडिया द्वारा 'स्वतःस्फूर्त जन आंदोलन' के रूप में प्रचारित इस फासीवादी व आतंकी जन-हनन अभियान की असलीयत को सामने लाने वाली प्रस्तुत किताब दरअसल एक जन-पक्षधर लेखिका की ईमानदार कोशिश का नतीजा है। बस्तरिया जनता के साथ कई हफ्तों तक रहकर और उनके दुख-दर्द और जीवन-मरण के संघर्ष को प्रत्यक्ष देख-समझकर ही इस किताब की रचना की जा सकती थी। देश के तमाम प्रगतिशील लोगों और जन पक्षधर लेखकों से हमारी अपील है कि वे संघर्ष के इन इलाकों का दौरा करें और जनता से रू-ब-रू होकर उनकी बात को दुनिया के सामने रखने की कोशिश करें। इस किताब को जन-जन तक पहुंचाने और प्रचारित करने में सहयोग दें।

- प्रभात प्रकाशन, दण्डकारण्य

एक अपील

क्रांतिकारी आंदोलन की जरूरतों के तहत मैं जनवरी 2006 में दण्डकारण्य गई थी। उस समय पश्चिम बस्तर डिवीजन में सलवा जुड़ूम का हमला जोरों पर था। मेरे जाने के बाद जनवरी में ही दक्षिण बस्तर में सलवा जुड़ूम शुरू हुआ था। अपने काम पर मैं जुलाई तक दक्षिण बस्तर में ही रही थी। चूंकि मैं हर दिन सलवा जुड़ूम के बारे में सुनने लगी थी, इसलिये मेरे अंदर यह इच्छा जाग उठी थी कि मैं सलवा जुड़ूम से पीड़ित लोगों से मिलूं। उनकी तकलीफों को प्रत्यक्ष देखकर जान लूं और यह देख लूं कि वे किस तरह जुड़ूम का मुकाबला कर रहे हैं। मैंने जब अपना प्रस्ताव उस डिवीजन के पार्टी नेतृत्व के सामने रखा तो उन्होंने फौरन ही पीड़ित जनता से मिलाने का इंतजाम किया। इसके लिये उन्होंने कोंटा दस्ते (एलओएस) को मेरी मदद के लिये साथ रखा। इस दल की कमांडर कॉमरेड कत्री थी। इस दल के अलावा कॉमरेड शांता ने भी मेरे साथ रह कर मेरी मदद की जो इसी इलाके में कृषि विभाग की जिम्मेदारी देख रही थी। कोंटा इलाके के 10 गांवों का हमने दौरा किया जो सलवा जुड़ूम के हाथों तबाह हो चुके थे।

यहां पर जारी सलवा जुड़ूम विध्वंस या यहां के क्रांतिकारी आन्दोलन की स्थिति या फिर इस क्रांतिकारी आन्दोलन में जनता की भागीदारी का समग्रतापूर्ण चित्रण करने की कोशिश मैं नहीं कर रही हूं। यह मेरे लिये नामुकिन भी है क्योंकि दण्डकारण्य के क्रांतिकारी आन्दोलन के साथ मेरा प्रत्यक्ष संबंध नहीं है। सिर्फ एक सप्ताह के दौर में और वह भी सिर्फ दस गांवों के दायरे में मैं जितना देख सकी, जान सकी और समझ सकी उसी पर आधारित हो मैंने यह लिखा

है। मैं ऐसा बिल्कुल नहीं समझ रही हूँ कि मैं इन दस गांवों के दायरे में भी सलवा जुडूम तांडव का या जनता के प्रतिरोध का या फिर उनकी भावनाओं का समग्र चित्रण कर पाई हूँ। मैं जितना बता पाई उससे कई गुना ज्यादा तबाही हुई है यहां। खासकर महिलाओं के साथ बलात्कार, उन्हें नंगा करके अपमानित करने, माताओं को अपने स्तनों से दूध निकालने पर मजबूर करने जैसी घिनौनी हरकतें इस इलाके में हुई हैं। एक अपरिचित महिला से जिसे वे पहले जानती ही नहीं थीं और वह भी चंद घंटों की मुलाकात में कैसे वे अपनी सारी दुख-तकलीफों व अपनी पीड़ाओं को बता सकती हैं? शायद पूरी तरह नहीं बताई होंगी। मैं यह भी जानती हूँ कि आदिवासी लोग जब तक सामने वालों पर भरोसा नहीं कर लेते तब तक दिल खोलकर बात नहीं करते। इसलिये भी यह समग्र चित्रण नहीं है। यह सलवा जुडूम के बारे में एक आंकलन भी नहीं है। यहां की जनता की जिंदगी पर सलवा जुडूम का प्रभाव और जनता इसका किस तरह मुकाबला कर रही है इसके बारे में 7-8 दिनों के मामूली से समय में यह लिखा गया है। यह एक सरसरी नजर से लिखी गई रचना है। मेरी उम्मीद है पाठक इसे इसी रूप में देखेंगे।

- बी.डी. दमयन्ती

फिर से घूमन्तू जिन्दगी की ओर...

हमारे दौरे का तीसरा दिन था। सुबह के 10 बज रहे थे। अचानक हमारे डेरे के सामने से लोग भागते हुये जाने लगे थे। आदमियों के कंधों पर सामानों से भरे कावड़ थे तो, महिलाओं की गोद में मासूम बच्चे और सिर पर गठरियां और कुछ लोगों के सिर पर अभी-अभी चूल्हों से उतारे गये खाने के गर्म बर्तन थे। अपनी मांओं या पिताओं के पीछे हांफते-हांफते दौड़ रहे छोटे-छोटे बच्चे, उनके सिर पर भी उतना सामान था जितना कि वो अपने छोटे-छोटे कंधों पर उठा सकते थे। मैं देखती हूँ कि अपने मासूम हाथों में महुआ (टोरा) तेल की बोतल उठाये एक छोटी सी बच्ची रुक कर रोने लगी, जो अपने पिता की तेज व हड़बड़ाई सी चाल की बराबरी नहीं कर पा रही थी।

“क्या हुआ दादा (भैया)? आप कहां भागे जा रहे हो? क्यों भागे जा रहे हो?” कॉमरेड कत्री ने रुकने का इशारा करते हुये पूछा।

एक दादा ने पल भर के लिये रुककर कावड़ को दूसरे कंधे पर बदलते हुये बताया कि उनके डेरे से कुछ दूर पर तेज फायरिंग हो रही है और इसलिये सब अपना ‘डेरा’ खाली कर जा रहे हैं। कुछ लोग तब तक हमारे डेरे को पार कर चुके थे। वे बिना रुके भागे जा रहे थे।

का. कत्री सभी को रुकने के लिये चिल्लाई और पूछी, “दादा किस ओर से फायरिंग हो रही है? कितनी दूर से हो रही है? आपने ठीक-ठीक सुना या नहीं?”

सभी को हमारे डेरे के पास रुकने को कहकर का. कत्री ने कुछ जन मिलिशिया कॉमरेडों को पता करने के लिये भेजा। साथ में दो किसानों को भेजा जिन्होंने फायरिंग की आवाज सुनने की बात कही थी।

एक घंटे के बाद मिलिशिया कॉमरेड व किसान लौट आये। “फायरिंग-वायरिंग कुछ नहीं थी, बादलों की गड़गड़ाहट की आवाज को हम फायरिंग समझ बैठे थे” शर्म और मुस्कुराहट के साथ एक किसान ने बताया।

वे और हम सब मिलकर हंसे। आज दण्डकारण्य में मौजूद हालात से अलग करके देखा जाये तो यह घटना पूरी तरह हास्यास्पद है। लेकिन प्रकृति की नब्ज को जानने में महारत हासिल जंगल मां की ये आदिवासी औलादें गरजने की आवाज सुन उसे फायरिंग समझ रहे हैं। जान बचाने के लिए इधर-उधर भाग रहे हैं, तो यह सामान्य घटना नहीं है। निश्चय ही इसके पीछे उनके भयानक अनुभव हैं जिन्होंने उनकी जिन्दगी को गहरे तक हिला दिया है।

जान के डर से भागे जा रहे सभी लोग नीलमडुगू गांव के बाशिंदे हैं। बगैर व्याकरण संबंधी गलती से इस वाक्य को बताया जाये तो -जान के डर से भागे जा रहे ये सभी लोग ‘एक समय’ नीलमडुगू गांव के बाशिंदे हुआ करते थे। एक समय नीलमडुगू गांव के निवासी होकर अब वो इस समय इसलिये उस गांव के निवासी नहीं रह गये क्योंकि अब नीलमडुगू गांव गांव ही नहीं रहा। वह उजाड़ दिया गया। उन्होंने यूं ही अपना गांव नहीं खोया। भयंकर आतंक के तांडव के बाद उन्हें जबरन वहां से खदेड़ा गया। 4 फरवरी 2006 की हाड़ कंपकंपा देने वाली ठंडी सुबह में

नीलममडुगू के बच्चों, महिलाओं, बूढ़ों सभी को जंगल-पहाड़ों की तरफ भागने पर मजबूर किया गया।

हर दिन की तरह उस दिन भी पौ फटते ही गांव जाग गया था। लेकिन वो दिन हमेशा की तरह आंगन बुहारना, पानी लाना, धान कूटना, चूल्हा जलाना, उस पर जावा चढ़ाना, मुरगियों, सुअरों, बकरियों को खोल देना आदि रोजमर्रा के कामों से शुरू नहीं हुआ। 16 साल की लड़की राजे ने पहरेदारी (सन्तरी)के लिये घर से निकलते समय पुलिस वालों को देखा। (यहां के गांवों में अपने गांव की रक्षा के लिये पहरेदारी आम बात बन गई है।) चूंकि पुलिस वाले पहरेदारी की चौकी की तरफ से ना आकर दूसरी दिशा से आये थे, इसलिये पहरेदारी करने वाले लोगों की नजर उन पर नहीं पड़ी थी। सबसे पहले राजे ने ही देखा और वह दौड़ कर पीछे आई व चिल्लाई 'पुलिस आ रही है।' बस, अभी-अभी नींद से जागकर आंखें मल रहा नीलममडुगू चौंक कर उठ गया। लेकिन कुछ ही लोग भागने में कामयाब हुये। राजे उस समय अपने पैरों में पहने प्लास्टिक के जूते निकाल फेंक कर (क्योंकि जूतों सहित पुलिस के हथियार चढ़ने से उसे दस्ता सदस्य घोषित कर दिया जाता है) जंगल में भाग गई। लेकिन कई लोग पकड़े गये। पुलिस जो जिस हाल में मिला उसे मन माफिक बड़े-बड़े डंडों से पीटते हुये सभी को हांक-हांक एक जगह इकट्ठा कर लिया। थोड़े समय पहले सुबह की मीठी नींद में सोया गांव चीखों, हाहाकारों और नन्हे-मुन्ने बच्चों के भयावह रूदन से गूँज उठा।

बाद में 10 घरों को आग लगाकर 19 आदमियों को जबरन घसीट अपने साथ लेते हुये पुलिस वाले लौट गये। उन 10 घरों में सब कुछ जलकर राख हो गया। चूंकि फसलों की मिंजाई का मौसम था इसलिये धान की कोठियां भरी हुई थी। जिस अनाज से साल भर भूख मिटती थी, जिस अनाज को बीज बनकर फिर से उगना था, देखते ही देखते उसका आग के हवाले हो जाना.... जिससे यह सब नहीं देखा गया, जिसने उसे बचाने की कोशिश की, जिसने उसे बचाने के लिये पुलिस व गुंडों की घेराबंदी को तोड़ने की कोशिश की उसे और ज्यादा मार खानी पड़ी। इन दस घरों के लोगों ने पहने हुये कपड़े छोड़ बाकी सब खो दिया, शायद खोया नहीं, शायद भी नहीं सचमुच उनसे छीन लिया गया। यह कहना भी मुश्किल है कि वो नींद से पूरी तरह जाग गये थे और बदन पर पूरे कपड़े थे। यहां की महिलायें पेटीकोट पहनकर उसके ऊपर लुंगी पहनती हैं। और ऊपर ब्लाउज पहनकर चुन्नी ओढ़ती हैं। लेकिन तेल्लम सुब्बी के बदन पर पेटीकोट को छोड़ कर कुछ भी नहीं था क्योंकि वह तभी नींद से जगी थी। उसे उसी हालत में पीटते-घसीटते ले जाकर और लोगों के साथ रखा गया। तेल्लम सुब्बी कई दिनों से अपने घर पर खपरैल छाने की सोच रही थी। इसके लिये एक-एक कर बकरे बेच-बेचकर उसने 12 हजार रुपये इकट्ठे कर रखे थे। घर के साथ-साथ पैसे और पैसों के साथ-साथ उसके सपने भी जल कर खाक हो गये। इतना ही नहीं पुलिस उसके पति को उठा कर ले गई। अब वह किसके लिये आंसू बहाये! पुलिस द्वारा उठा लिये गये अपने पति के लिये रोये? बदन को छुपाने के लिये एक चींदी तक न रहने पर रोये? पाई-पाई जोड़कर जमा किये पैसों के जलकर राख होने पर रोये? अपने सपनों के खाक होने पर रोये? उससे लिपटकर रो रहे डरे-सहमे उसके बच्चे जो रोना बंद नहीं कर रहे हैं, अगर अचानक "मां! भूख लगी है" कहेंगे तो क्या करे यह ना समझ पाने पर रोये? आखिर वह किस-किस पर रोये? यह स्थिति केवल तेल्लम सुब्बी की है ऐसा नहीं है। यह एक उदहारण मात्र है। दण्डकारण्य में जाने कितनी ही तेल्लम सुब्बी होंगी जो समझ नहीं पा रहीं कि किस पर रोयें?

बस, उसी दिन से नीलममडुगू गांव नही रहा! कुछ परिवार आन्ध्र में अपने रिश्तेदारों के पास चल दिये, जबकि ज्यादातर परिवार सिर छुपाने के लिये जंगल के अंदर गए। यहां यह कहना क्या सही होगा कि परिवार गये हैं? नहीं! 19 पुरुष जुड़ूम के कब्जे में हैं। यानी लगभग 19 परिवार (गांव में कुल 46 परिवार हैं) आधा बोझ उठाने वाले पुरुषों या जवान बेटों के बिना ही जान बचाकर भाग गये। जिनके घर नहीं जले हैं वे जितना अनाज ढो सकते थे, उतना अनाज व अन्य सामान समेटकर भाग गये। जिनके घर जल गये थे उन्होंने खाली हाथ गांव को छोड़ दिया। तबसे उन्होंने अपने गांव से पैदल एक घंटे की दूरी पर पहाड़ों में पेड़ों के नीचे कुछ दिन बिताये। जो आंध्र गये थे उन्होंने अपने रिश्तेदारों के घरों में कुछ दिन गुजारे। उनके साथ मिलकर ज्वार कटाई का काम करके आधा पेट भरते हुये दिन काटे। ज्वार की कटाई खत्म होने के बाद जब गुजारा मुश्किल हो गया तो वे फिर से अपने इलाके में लौट आये।

एक महिला माड़िवी माड़के ने यूं बताया, "आंध्र में हमारा कोई रिश्तेदार नहीं है। लेकिन इस गांव के लोगों के साथ हम भी गये थे। तब कैसी स्थिति थी हमारी? कुछ सोचना भी बंद हो चुका था। यहीं रहेंगे तो मार डालेंगे यह डर! इसलिये कम से कम जान बचाने के लिये हम उधर भागे थे। पुलिस और गुंडों के जाने के बाद मैंने अपना घर बुझा लिया था। लेकिन सब कुछ जल चुका था। कुछ नहीं बचा था। ऐसे थोड़े अनाज को जो पूरी तरह जलकर राख

नहीं हुआ था, गठरी में बांधकर चले गये थे। वहां एक अपरिचित व्यक्ति के घर में ठहरे थे। वो रिश्तेदार नहीं था फिर भी उन्होंने हमें जगह दी ताकि हम अपना सिर छुपा सकें। रोज वे खाना पकाकर दिया करते थे। लेकिन हम जो अनाज ले गये थे वह एक सप्ताह में ही खत्म हो गया। हमें कोई काम भी नहीं मिला। भूख से मरना ही हमारे सामने बचा था। यूँ ही मरना है तो वहीं अपने इलाके में जाकर मरेंगे यही सोच कर हम वापस चले आये।”

जिन 19 लोगों को पुलिस ले गई थी उनकी बर्बर पिटाई करके विंजरम के ‘राहत शिविर’ में डाल दिया गया। इनमें से पांच लोगों को एसपीओ बना दिया गया। लेकिन दो सप्ताह के बाद ही वे सब वहां से भाग निकले जिनमें बनाए हुए पांच एसपीओ भी शामिल थे। और वे अपने परिवारों से मिल गये।

लेकिन इन ग्रामीणों के भयावह अनुभवों का सिलसिला यहीं खत्म नहीं हो जाता। 10 घरों को जलाकर राख कर दिया गया। जनता को यातनायें दी गईं। 19 लोगों को शिविर में रखकर मारपीट की गई। उनका ब्रेन वाश करने की कोशिश की गई। लेकिन फिर भी नीलममडुगू ने घुटने नहीं टेके थे। इसलिये 6 मई को इस गांव पर फिर एक बार हमला बोला गया। चूंकि तब तक गांव पूरा खाली हो चुका था इसलिये कोई नहीं मिला। पर इस बार पूरे गांव को जला डाला। गांव में 15 साल का किशोर रामाल मिला तो पुलिस ने उसे गोली मार दी। जंगल में छुपकर रह रही चार महिलाओं को उन्होंने तब पकड़ लिया जब वे पानी के लिए जा रही थीं। इनमें से एक मुसकी इडमे के छह छोटे-छोटे बच्चे हैं। एक तो नवजात शिशु है जिसको पैदा हुये एक महीना भी नहीं हुआ था। ‘मेरे छोटे-छोटे बच्चे हैं, छोड़ दीजिये’ कहकर गिड़गिड़ने के बावजूद जुडूम के झुंड ने नहीं सुना। एक और महिला माडिवी अडिमे जो 50 साल की है, को पुलिस ने बुरी तरह पीटा। एक महीने तक शिविर में दूधर जिंदगी जीने के बाद इनमें से तीन महिलायें तो भागने में सफल हुईं, लेकिन कोराम कन्नी नामक 20 साल की युवती अभी तक नहीं लौटी। जब उसे पकड़ लिया गया था तभी पुलिस वालों को भदे ढंग से यह कहते हुये सुना गया था कि ‘यह छोकरी ठीक है’। पहले से शादीशुदा इस युवती के साथ शिविर में सलवा जुडूम के एक गुंडे ने जबरन शादी करवा ली।

इस तरह 4 फरवरी को मौत के डर से गांव छोड़कर भागने वाले ये ग्रामीण दो महीनों तक जंगल में पेड़ों तले ही जिन्दगी जैसे-तैसे गुजारते रहे। बाद में वहाँ घास-फूस की छोटी-छोटी झुगियां बना लीं। एक-एक झुग्गी में तीन-तीन, चार-चार परिवार रह रहे हैं। अब वहां से भी भागने लगे हैं क्योंकि उनको डर है कि सलवा जुडूम के गुंडे वहां भी पहुंच सकते हैं।

अब आप ही बताइए, जब ये भयावह अनुभव उनका साये की तरह पीछा छोड़ते नजर नहीं आ रहे हैं तो बादलों की गड़गड़ाहट को फायरिंग की आवाज समझते हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? खुद की और अपने बच्चों की जान बचाने के लिये भाग रहे हैं तो इसमें हैरानगी ही क्या है?

इस तरह भागने वाले सिर्फ नीलममडुगू के ग्रामीण ही नहीं थे!

इसके पहले ही कि हम सलवा जुडूम के हमलों का शिकार इलाके में पहुंचते, सलवा जुडूम द्वारा पीड़ित मिलना शुरू हो गये। रास्ते में हमें एक गांव मिला जिसका नाम है बंडड। पहले से तय कार्यक्रम के मुताबिक हम वहां रुक गये। कुछ देर आराम कर खाना खाकर हमें वहां से निकलना था। हम जब वहां पहुंचे तो तब पूरे गांव में हलचल मची हुई थी। माजरा क्या है? पूछने से पता चला कि वे ‘छट्टी’ कर रहे हैं। उनके बताये अनुसार मैं समझ गई कि किसी नवजात बच्चे के नामकरण का सामारोह चल रहा है। चूंकि हम थक कर चूर हो गये थे इसलिये एक घर के आंगन में इमली के पेड़ के नीचे बिछाये खाटों पर बैठ गये। हमारे पास पहुंचे लोगों से बातियाते समय पता चला कि कोत्ताचेरवु गांव के लोग उसी गांव में शरण लिए हुए हैं जो सलवा जुडूम के हमले का शिकार हुये थे। हमने उन सभी को एक जगह बुलाकर बातचीत की।

कोत्ताचेरवु गांव पर दो बार जुडूम का हमला हुआ था। इस गांव में 50 घर थे। सभी जला दिये गये। मड़काम अडमाल (60), मड़काम देवाल (20) और माडिवी बुदराल (20) इन तीन व्यक्तियों की गोली मारकर हत्या की गई।

माडिवी चेन्ना (60) और कोतवाल (60) नामक दो वृद्धों को नुकीले हथियारों से कुरचकर घायल किया गया। 20 साल की दूले जो केएएमएस (क्रांतिकारी आदिवासी महिला संगठन) की कार्यकर्ता थी, को उठा ले गये। इस भीभत्सकांड से डरकर जनता भाग गई, जिसमें से 34 परिवार बंडड गांव पहुंचे। बाकि परिवार दूसरी जगहों पर गये।

इस तरह जान बचाने के लिये भागकर आने वाले कोत्ताचेरवु के ग्रामीणों को बंडड के लोगों ने पनाह दी। अपने घरों में जगह दी। कुछ नई झोपड़ियां भी उनके लिये बनाकर दीं। अपनी जमीनों में से भी हिस्सा दिया। सबसे बढ़कर इन लोगों ने उन्हें भरोसा दिया कि इनके पास जो भी रूखी-सूखी है, मिल बांट कर खायेंगे। हम जब बंडड गांव गये तब तक कोत्ताचेरवु के ग्रामीणों को वहां रहते हुये 5 महीने हो चुके थे। लेकिन ठीक एक सप्ताह बाद जब हम अपना दौरा समाप्त कर वापसी में फिर बंडड पहुंचे तो हालत पूरी तरह बदल चुकी थी। गांव में कोई हलचल नहीं थी! कोई सामरोह नहीं था! पूरा गांव वीरान हो चुका था और मुर्दा शांति पसरी हुई थी। कोत्ताचेरवु के ग्रामीणों को अपने घरों में पनाह देने वालों ने अब खुद अपने घरों को खाली कर दिया। कोत्ताचेरवु के लोगों को अपनी जमीनों में हिस्सा देने वालों को अब अपने खेतों में जाना छोड़ना पड़ा। उनके गांव के नजदीक में स्थित रेगड़ी गांव को पुलिस वालों ने हेलिकॉप्टर से उतर कर जला दिया। यह खबर सुनने के बाद इन लोगों ने एहतियात बरतते हुये अपना गांव खाली कर दिया। अब इन लोगों के साथ-साथ इस गांव में पनाह पाने वाले कोत्ताचेरवु वाले भी कहीं और छिपने चले गये। वह नई जगह भी उन्हें कितने दिनों तक शरण दे सकती है? किसी के पास जवाब नहीं! स्थिति पूरी तरह पल्टी हुई थी। पूरी तरह अनिश्चित!

दण्डकारण्य में आज उन तमाम लोगों की यही स्थिति है जहां पर सलवा जुडूम चलाया जा रहा है। मानवजाति ने एक समय आहार की तलाश में घूमंतू जिंदगी जियी थी। लेकिन यहां के आदिवासी अपना पेट भरने वाली जमीनों और स्थाई आवासों को छोड़कर फिर से घूमंतू जिन्दगी जीने पर मजबूर हैं। यहां गौरतलब है कि विकास के सिलसिले में मानवजाति को उपलब्ध हुये स्थाई आवासों को शासक वर्ग 'विकास' के नाम पर आखिर अस्थिर क्यों बना रहे हैं? यह घूमंतू जिंदगी इन पर क्यों थोपी जा रही है? इस सवाल का जवाब मुकुमतोम गांव के लच्छिनदोरा के पास है – “हमारी जमीनों में सोना है। लोहा और दूसरी कई चीजें हैं। इन्हें लूटना है तो बीच में पार्टी खड़ी है। पार्टी का सफाया करने के लिये सरकार चाहती है कि पहले यहां की जनता का सफाया किया जाये। हमें यहां से भगाने के लिये सरकार हमारे घर जला रही है। हमारी संपत्ति को तबाह कर रही है। हमारी अंधाधुंध हत्याएं कर रही है।”

फल-फूल रहे विकास को नोचता विध्वंस!

अक्सर सरकारें डींगें मारती रहती हैं कि वे आदिवासियों के विकास के लिये अनगिनत योजनायें लागू कर रही हैं। जबकि वास्तव में इनसे आदिवासियों के विकास में कोई मदद नहीं मिल रही है, बल्कि उनके विकास को दबा दिया जाता है। यह हम सलवा जुडूम के आंतक का शिकार हरेक गांव में देख सकते हैं।

उदाहरण के लिये मुकुमतोम गांव की चर्चा करेंगे। मैंने कुछ ऐसे गांव देखे जो अभी सलवा जुडूम के आंतक का शिकार नहीं हुये हैं। साफ-सुथरे घर और उनके भीतर रहने वाले साफ-सुथरे मनुष्य, पशु और पक्षी भी। हम जहां भी गये गर्मजोशी भरा स्वागत, हस्तमिलन, लोगों के चेहरों पर महीन मुस्कराहट देखने को मिलती थी। स्वागत-सत्कार करने के उनके तौर तरीकों में कहीं भी दिखवाटीपन नहीं लगता। अनावश्यक हाव-भाव नहीं रहते। ऐसी सहजता जिसमें बनावटीपन का कोई अवशेष नहीं होता। इन गांवों में जीवटता छलकती हैं। लेकिन मुकुमतोम गांव को देखने के बाद मेरा मन पीड़ा से भर उठा। वह एक गांव जैसा नहीं था। उसमें मनुष्य नहीं थे। न कोई स्वागत करने वाला, ना वो महीन मुस्कान, ना ही कोई हाथ मिलाने वाला। गलियों में दिखने वाले मासूम बच्चों की उत्सुकता भरी नजरें भी नहीं थीं। ना किलकारी मार कर खेलने की उनकी आवाजें! कहां गये सब? क्या खा गया मुकुमतोम को?

गांव में जिधर भी नजर जाती हर तरफ जलकर ढेर हो चुके घर। जलकर बची काली दीवारें, एक अजीब सी निर्जीवता जैसे पूरा बदन जलने के बाद गीले घावों से बेहोश हालत में धरती मां लेटी हुई हो। यह भी नहीं कह सकते कि वह एक कब्रगाह जैसा है। क्योंकि मृत व्यक्तियों को दफनाने या दाह संस्कार करने लोग कब्रगाह या शमसानघाट जाते तो हैं! वहां इकट्ठा होते तो हैं! और जी भर कर रो भी लेते हैं। एक दूसरे को सांत्वनायें दे लेते हैं। लेकिन यह कैसी जगह है? एक प्रतिबंधित क्षेत्र! जो लोग जन्म से लेकर कल तक इसी गांव को अपनी दुनिया समझकर जी रहे थे, वही लोग आज अपने ही गांव में कदम रखने की हिम्मत नहीं कर पा रहे हैं। पिटाई से, आग की लपटों से, पीछा करते तीर-धनुषों से, रायफलों की गोलियों से जान बचाने के लिये चीखते-चिल्लाते, रोते-गिरते, खून रिसते जख्मों से बदहवास भागते लोग अभी भी बुरे सपने से उठने सी स्थिति से नहीं उबर पाए थे। हमने एक घर के भीतर, माफ

कीजियेगा, छत के जलकर गिर जाने के बाद बची काली व नंगी दीवारों के भीतर जले हुये दरवाजे से प्रवेश करने की कोशिश की। अंदर से कुछ सुअर एक साथ अचानक भागते हुये बाहर निकले और हमारे बगल से तेजी से दौड़ते हुये चंद पलों में ही हमारी आंखों से अझोल हो गये। यहां के गांवों में लगभग सभी परिवार सुअर पालते हैं। घरों के बगल में सुअरों के बाड़े बनाये जाते हैं। आमतौर पर वे गलियों में खुले घूमते रहते हैं। मनुष्यों की मौजूदगी की परवाह तक नहीं करते हैं, लेकिन हमारी मौजूदगी का एहसास होते ही वे इतने भयभीत होकर भागे हैं जैसे वे अभी भी जुड़ूमी आंतक के सदमे से नहीं उबरे हों।

जुड़ूमी झुंड ने घरों को ही नहीं मवेशियों, बकरों, सुअरों और मुरगियों के बाड़ों को भी जला दिया है। जो भी पशु-पक्षी उनके हाथ लगा उसे उसी आग में भूनकर खा लिया। कुछ साथ भी ले गये। भयभीत होकर जो पशु-पक्षी भागे वो अभी तक गांव वालों को नहीं मिल पाये हैं। कल तक मनुष्यों के पालन-पोषण में, लगभग मनुष्यों के साथ-साथ जीने वाले पालतू जानवर आज इंसानों की मौजूदगी से ही डर कर भाग रहे हैं। अपने सफर में हमने कई जगह ऐसे मवेशियों के झुंड देखे जो आस-पास इंसान की मौजूदगी का एहसास होते ही भाग खड़े होते थे।

हमने खंडहरों में तब्दील हुये हर घर के अंदर जाकर देखा। जलकर नीचे गिरी छत, टूटे खपरैल, जलकर पिघली घगरियों और बरतन के अवशेष, राख के ढेरों में तब्दील हुआ अनाज ओर जले हुये कपड़े... हर घर में यही मंजर था। आंखों को जड़ कर देने वाला मंजर। इन जले हुये घरों के पीछे, इन संपत्तियों के पीछे, राख के ढेरों में बदले अनाज के ढेरों के पीछे कितनी मेहनत छिपी होगी मुझे इसका अंदाजा है। क्योंकि मैंने प्रत्यक्ष देखा था। इस दौर के शुरू होने से पहले मैं एक अन्य कॉमरेड के साथ कॉमरेड कत्री और उसके साथियों का इंतजार करते एक गांव में दो दिन रुकी थी। दो दिन हम एक ही घर में रुके थे। उस परिवार में पति-पत्नी और उनकी तीन संतानें रहती थीं। एक लड़की और दो लड़के। लड़की बड़ी थी, शायद 20 साल की थी। वह केएएमएस की एरिया कमेटी स्तर की नेता है। साथ ही साथ जनताना सरकार में भी वह सदस्य है। सक्रिय कार्यकर्ता है। दोनों लड़के छोटे हैं। बड़े लड़के की उम्र 12 वर्ष होगी और सबसे छोटे लड़के की उम्र 6-7 साल तक होगी। मुंह अंधेरे में ही सब नींद से जागकर जल्दी से खेतों में जाया करते थे। यह बात तो मैं पहले से जानती थी कि यहां महिलायें भी खेतों की जोताई करती हैं। लेकिन छोटे बच्चे को ले जाने से मुझे लगा कि शायद उसे इसलिये ले जा रहे होंगे क्योंकि घर में उसकी देखभाल करने वाले कोई नहीं हैं। अब तो हम घर में हैं। इसलिये मैं बोली कि उसे घर में छोड़कर जाइये, उसे हम संभाल लेंगे। उनका जवाब सुनकर मैं चौंक गई। उन्होंने मुझे बताया कि वह भी जोतता है। मेरे आश्चर्य भरे हाव-भाव देखकर लड़की ने मुस्कराते हुये कहा, “बच्चा ठीक से चलना सीख गया तो उसे जोतना भी सिखाया जाता है।” बाद में मैंने जब दूसरे गांव में खेतों में जाकर देखा तो कई ऐसे छोटे बच्चे दिखाई दिये जो अपने मां-बाप के पीछे-पीछे बैलों को हांकते हुये खेत जोत रहे थे। जोताई में नन्हे बच्चों को भी कोई रियायत नहीं है। पर इतना जरूर है कि रात का बचा हुआ थोड़ा सा खाना मां-बाप उनके लिये साथ ले जाते हैं। वे 10-11 बजे खेतों से लौट आते हैं। तब घर का पुरुष मवेशियों को बांधकर नहा-धोकर कमर सीधी करता था तो बच्चे नहा-धोकर खेलने-कूदने लगते थे। तब मां-बेटी घर-आंगन की साफ-सफाई कर, बरतन मांजकर पानी ले आकर खाना बनाती थीं। तब सभी हाथ-पैर धोकर खाना खा लेते थे। उसके बाद बाप-बेटे बमवेशियों को चराने ले जाते थे तो मां धान कूटती थी। और बाद में बीज साफ करती थी। इस हिसाब से देखा जाये तो जुड़ूम ने न जाने कितने लोगों के श्रम को आग के हवाले कर दिया होगा? उसके द्वारा जलाये गये हजारों क्विंटल अनाज में न जाने कितने हजार नन्हे हाथों का श्रम भी जुड़ा हुआ होगा!

सिर्फ अनाज में ही नन्हे-मुन्नों का श्रम है क्या? इस इलाके में मुझे ऐसे कई बच्चे दिखाई दिये जो हाथ में छोटी सी टोकरी लिये पेड़-पेड़ घूमते हुये महुआ बीनते थे। एक हाथ में छोटा सा बरतन और दूसरे से छुरी लेकर जंगल में घूम-घूमकर गोंद इकट्ठा करने वाले बच्चों को यहां अक्सर देखा जा सकता है। शायद कई और ऐसे उत्पादन कार्यों में बच्चों का श्रम जुड़ा हो सकता है।

बच्चों का ही नहीं बूढ़ों का श्रम भी कम नहीं है। कमर झुक जाने के बावजूद भी लाठी के सहारे चलते हुये महुआ बीनने वाले बुजुर्गों को और मवेशी चराने वाले बुजुर्गों को यहां अक्सर देखा जाता है।

हम जब उन जले हुये घरों के बीच कुछ खोने वालों की तरह घूम रहे थे, हमें आश्चर्य में डालते हुये एक साबुत घर दिखाई दिया। बस, गलती से उसे जलाना भूल गये थे। उस घर में रहने वाले लोग हमला होने से पहले ताला लगाकर चले गये, ऐसा हमें बताया गया। ताला लगा हुआ ज्यों का त्यों है। घर तो नहीं जला पर इसमें घुसने की हिम्मत घर

वालों में नहीं हैं। कम से कम घर में रखे हुये अपने सामान ले जाने की हिम्मत भी उनमें नहीं है। बस, वही एक घर सबूत के तौर पर बचा हुआ था कि कल-परसों तक सभी घर इसी प्रकार के हुआ करते थे। एक घर का आधा हिस्सा जला है। दूसरा आधा हिस्सा सही सलामत है। और उसमें सामान भी ठीक-ठाक है। लेकिन किसी ने उस सामान को नहीं छुआ। कुछेक घरों में कहीं-कहीं कोनों में कुछ अनाज जलने से बचा हुआ है। लेकिन उठाकर ले जाने की हिम्मत कोई नहीं कर पा रहा है। गांव के छोर में बसे घरों के लोग छिप-छिप आकर बचे-खुचे थोड़े सामान को ले जा रहे हैं। गांव के बीच में तो कोई आने की हिम्मत नहीं कर रहा है। जब हम गांव में घूम रहे थे तो तब एक व्यक्ति ने गांव में आते हुये हमें देखा और पलटकर भागना शुरू कर दिया। क्योंकि उसने हमें जुड़ूम वाले समझ लिया था। जब हमने जोर से चिल्लाकर आवाज दी तब वह लौट आया। अपने ही गांव में और अपने ही घरों में चोरों की तरह आने की मजबूरी कितनी अजीब है?

इस तरह जली हुई सूनी दीवारों, गिरे हुये मलबों और राख के ढेरों के बीच हम काफी देर तक घूमते रहे। इन सूनी दीवारों ने हमें यह समझाया कि कल-परसों तक इस गांव के लोगों ने कैसे जिया था। सभी घर बड़े-बड़े तीन-चार कमरों के थे। यह मलबों के देखने से साफ मालूम हो रहा था। लगभग सभी घरों की छतें खपरैल के छाई हुई थीं। तीन घरों में फर्श सिमेंट का बनाया हुआ था। हमें यह भी समझ में आया कि सभी लोगों के घरों के साथ-साथ मवेशियों और मुरगियों के बाड़े वगैरह हुआ करते थे। 56 घरों वाले इस गांव में तीन तरफ नलकूप हैं। एक जगह तो नलकूप के बगल में ही बाथरूम और कपड़े धोने के लिये सिमेंट से बनाई गई महराबें (तख्त) भी हैं। इसके पहले यहां की जनता नहरों और तालाबों में ही नहाती थी। मवेशियों को नहलाने के लिये इस्तेमाल करने वाले तालाबों में इंसानों के नहाने से चर्मरोगों का शिकार होना आम था। इतना ही नहीं, खुली जगहों में नहाने के कारण बदन पर कुछ कपड़े पहन कर ही नहाना पड़ता है। इससे भी, खासकर महिलाएं कई बीमारियों का शिकार हो जाती हैं। ऐसी तकलीफों से यहां का क्रांतिकारी आंदोलन (मेरे ख्याल से यह महिला आंदोलन के प्रयासों का नतीजा होना चाहिए) मुक्ति दिला रहा है। हाल के वर्षों में गांवों में नलकूपों या कुओं के बगल में जनता अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार ताड़ के पत्तों से या दीवारों से बाथरूमों का निर्माण कर रही है। लगभग सभी गांवों में ये बाथरूम सिर्फ महिलाओं के लिये हैं। लेकिन एक गांव में पुरुषों के लिये अलग से बाथरूम का होना मेरे लिये आश्चर्य की बात थी। पितृसत्तात्मक समाज की मान्यता है कि पुरुषों के नहाने के लिये कोई आड़ की जरूरत नहीं है। उन मैदानी इलाकों में भी जहां महिलाओं के लिये आड़ में रहकर नहाना अनिवार्य है, पुरुषों को खुले में नहाते देखा जाना आम बात है। लेकिन आदिवासी समाज में इस संस्कारपूर्ण भावना का शुरू होना कि पुरुषों के लिये भी नहाने के लिये आड़ होनी चाहिये, यह सिर्फ आंदोलन के प्रयासों का नतीजा है।

जब मैंने इस गांव के नलकूपों और उससे सटे हुये बाथरूमों को देखा तो मुझे एक शहर की झोपड़पट्टी याद आई जहां मैं पहले काम करती थी। उस झोपड़पट्टी का नाम है इंदिरा नगर। शहर की भीड़-भाड़ वाली सड़क से सटा हुआ है वह 'नगर'। अब मुझे उस बस्ती का क्षेत्रफल तो याद नहीं है पर बेहद कम जगह में लगभग 40 परिवार पिछले 40 सालों से रह रहे हैं। सभी लोग छोटी-छोटी झोपड़ियां बना कर रह रहे हैं। सभी झोपड़ियां तंग हैं। और किसी का भी क्षेत्रफल 35-40 वर्ग फुट से ज्यादा नहीं है। उस बस्ती में दो फुट की चौड़ाई वाली दो गलियां हैं ताकि सभी झोपड़ियों में जाया जा सके। उन झोपड़ियों में खाना पकाने और खाने के अलावा और कोई काम नहीं हो सकता। सड़क पर एक नलकूप है। बरतन मांजना, कपड़े धोना, नहाना सभी कामों के लिए उस नलकूप के पास ही जाना पड़ता है। यहां तक कि खाना खाने के बाद जूठा हाथ धोने के लिये भी सड़क पर जाना पड़ता है। इस 'नगर' के ठीक सामने एक सुलभ शौचालय है जो अभी-अभी बनाया गया है। शौच करने के लिये पैसा देकर उसमें जा सकते हैं। पेशाब तो सड़क किनारे 'नगर' से सटकर बहने वाली गंदी नाली में ही करना पड़ता है। महिलायें कंधों तक पेटीकोट पहनकर नलकूप के पास आनन-फनन में नहाती हैं। उस नलकूप के ठीक सामने एक लॉज रहता है। उस लॉज की ऊपरी मंजिल की दीवार से सटकर झांकने वाले, सड़क पर जाते हुये पलट-पलटकर देखने वाले मर्दों को गालियां देते हुये, उनकी अश्लील टिप्पणियों को बर्दाश्त करते हुये, जब बर्दाश्त नहीं हुई तो लड़ते-झगड़ते हुये नहाना यहां की महिलाओं के लिये आदत सी बन गई है। सरकारों द्वारा काफी तरक्की का ढिंढ़ोरा पीटे जाने वाले हाईटेक शहरों के बीचोंबीच, वह भी प्रधानमंत्रियों के नाम पर बनी बस्तियों में महिलाओं के लिये नहाना इतना तकलीफदेह है तो, वहीं दूसरी तरफ इन दूर-दराज के आदिवासी गांवों में जनता द्वारा तैयार की जा रही ऐसी व्यवस्था यह बता रही है कि यहां के सामाजिक

विकास की दिशा क्या है।

हम वहां घूम-घूमकर उस गोपनीय जगह (यह जगह हमारे लिये गोपनीय नहीं है) की तरफ बढ़े जहां मुकुमतोम गांव की जनता फिलाहल शरण ली हुई है। आधा घंटा चलने के बाद 'बेनोर' (कौन है) का शब्द जोर से सुनाई दिया। जब हमारी टीम के सदस्यों ने उसका जवाब दिया तो तुरंत ही एक तीर-धनुष धारी युवती पेड़ की ओट से बाहर आई और हमसे हाथ मिलाया। वहां से थोड़ा दूर जाने के बाद खेत जोतते हुये कुछ लोग दिखाई दिये। हमने उनका अभिवादन कर हाल-चाल पूछा और डेरे के लिये अनुकूल जगह देखकर पिटदू उतार लिये। बारिश से भीगे पालिथीन शीटों को सुखाने के लिये हम फैला ही रहे थे कि धीरे-धीरे पेड़ों और झाड़ियों के ओट से निकल लोग हमारी तरफ आने लगे थे। नजदीक जाकर देखने पर लोग ही नहीं बल्कि उनके बनाई हुई झोपड़ियां भी दिखाई देने लगी थीं। कुछ पेड़ों के नीचे, कुछ झाड़ियों के बीच और पहाड़ियों से सटकर दो-दो, तीन-तीन के हिसाब से झोपड़ियां बनाई गई थीं ताकि दूर से न दिखे।

उन सभी को जब हमने एक जगह बुलाया तो उन्होंने बहुत सारी बातें बताना शुरू किया। उनकी बातों से मुझे उनके अतीत और वर्तमान के बारे में कुछ समझने को मिला। भविष्य लेकर उनकी चिंता समझ में आई। जब उनके ऊपर किये गये हमलों के बारे में वे बताने लगे तो हमारी आंखों के सामने वो तमाम भीभत्सपूर्ण दृश्य उतर आए।

हमले से पहले इस गांव में 56 घर थे। जब क्रांतिकारी आंदोलन ने इस गांव में दस्तक दी तब और बहुत कम घर थे। क्रांतिकारी आन्दोलन के साथ संबंध मजबूत होने के बाद वन विभाग वालों की ज्यादातियां कम हुईं, जिससे गांव और मजबूत हुआ। क्रांतिकारी आंदोलन के जरिए जमीनें हासिल की गईं। हर परिवार को 3 से 10 एकड़ तक जमीन यानी औसतन 5 एकड़ जमीन उपलब्ध हुई। ज्यों-ज्यों लोगों की आर्थिक स्थिति बेहतर होती गई, उन्होंने झोपड़ियों की जगह छोटे-छोटे घरों बना लिये। इसके बाद छोटे-छोटे घर को निकालकर बड़े घर बना लिये। अब जो घर जला दिये गये वे सब 5-6 साल का थे। सबसे पुराना घर 10 साल पुराना था। सबके पास गाय-बैल, बकरी, मुर्गीयां आदि थे। लगभग 20 परिवारों के पास सुअर थे। गांव में 10 साईकल, 5 रेडियो, 4 टेपरिकॉर्डर थे। 5-5 लोग घड़ी पहनते थे। इस गांव के कुल 13 बच्चे बाहर जाकर पढ़ाई करते थे। कोंटा में 4, विंजारम में 4 और गोरखा में 5 बच्चे पढ़ाई कर रहे थे।

ये संक्षिप्त ब्योरे हमें क्या बता रहे हैं? आज पूरे समाज द्वारा हासिल 'विकास' की तुलना में इनका यह विकास शायद कोई बड़ा विकास नहीं हो सकता। क्योंकि बाहरी समाज में मौजूद साजोसामान, ज्ञान-विज्ञान, सुविधायें आदि इनके पहुंच से दूर अभी भी हैं। लेकिन 'कल कैसे जियेंगे' वाली समस्या इन्हें नहीं है, जबकि यह बाहर के समाज में अत्याधिक लोगों की समस्या है। भूख से मरने की स्थिति इनकी नहीं है। कर्जों के बोझ से दबकर आत्महत्या करने की नौबत भी इनको नहीं है। नौकरियों से निकाल देने से पेट पालने के लिये सड़कों पर चप्पल घिसाने की जरूरत भी इन्हें नहीं है। कोई रोजगार न मिलने से शरीर बेचने, खून बेचने, किडनी बेचने या अपने बच्चों को बेचने की बदहाली इनमें नहीं है। पार्टी के प्रवेश से लेकर अब तक इनकी जिंदगी के हालात में एक सिलसिलेवार तरक्की देखी जा सकती है। इनमें यह निश्चितता झलकती है कि मेहनत करेंगे तो पेट भरना कोई मुश्किल काम नहीं है। जमीन, आवास, रोटी, कपड़ा आदि बुनियादी जरूरतें पूरी होने के कारण सुविधाजनक जिंदगी के लिये कुछ साधन जुटाने का सिलसिला भी शुरू हुआ था यहां। 'शिक्षा' की सोच भी फलने-फूलने लगी थी जो पार्टी के आने से पहले तक खयालों में भी संभव नहीं थी।

यह सब जनता ने बुर्जुआई सरकार के सहयोग के बिना ही हासिल किया। सच बताया जाये तो उस सरकार से लड़ते हुये ही, और भी स्पष्ट रूप से बताया जाये तो लड़कर ही हासिल किया। अगर यह संघर्ष नहीं रहता तो शायद उन्हें अपने ही जंगल में पराये लोगों की तरह जीना पड़ता। पत्ता तोड़ने, फल तोड़ने, बैल-बकरियां चराने, यहां तक कि मुर्गीयां चराने के लिये भी पल-पल डरते हुये, वन विभाग वालों के जुल्मों का शिकार बनते रहना, हमेशा एक जगह से दूसरी जगह भगाते-भागते रहना - आज भी यही हालात होते। क्या यह स्थिति भी हो सकती थी? अगर यह संघर्ष नहीं होता तो अब तक क्या ये सारे जंगल बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हाथों में पड़कर मरुस्थल न बन गये होते?

ऐसा होने से रोक कर, अपनी जमीन व जंगल को बचाकर यहां की जनता ने जो विकास हासिल किया, उसे शासक वर्ग कतई बर्दाश्त नहीं कर पा रहे हैं। इसलिये 4 फरवरी 2006 को इस गांव पर लगभग 150 पुलिस बलों, नगा जवानों

और गुंडों ने दो दलों में बंटकर धावा बोला। जो दल पहले आ धमका उन लोगों ने एक सूची निकालकर पूछना शुरू किया 'ऊराल का घर कहां है?' और 'पोज्जे का घर कहां है?' कुछ और भी लोगों के घरों के बारे में पूछा। वे सब जन संगठनों के नेता और सक्रिय कार्यकर्ता हैं। इस गांव में हो रहे विकास के कामकाज में इन्हीं लोगों की भूमिका महत्वपूर्ण थी। इसलिये वे जुड़ूमी गिरोह के पहले निशाने पर आ गये। उनके सवालियों का जवाब किसी भी ग्रामीण ने नहीं दिया। लेकिन उनके साथ आये गुंडों की निशानदेही पर संगठन के नेताओं के छह घर जला दिये। ऊराल की पत्नी और पोज्जे के बारे में उन्होंने बार-बार पूछा। उस झुण्ड को देख के एएमएस कार्यकर्ता पोज्जे वहां से खिसक गई थी। ऊराल की पत्नी तो लोगों के बीच ही रही पर किसी ने उसके बारे में गुंडों को नहीं बताया। इसलिये वह बच सकी। पर पोज्जे की मां को उन्होंने बुरी तरह पीटा। अन्य 10 लोगों को भी पकड़कर नीलममडुगू गांव तक ले गए। उनकी बेदम पिटाई की। इनकी पिटाई से कुंजाम लच्छिनदोरा के कान से खून निकला। इन लोगों के समक्ष ही नीलममडुगू को जला दिया। बाद में जुड़ूम में शामिल होने की चेतावनी के साथ इन्हें छोड़ दिया। इनमें से ऊराल का छोटा भाई भीमाल को साथ ले जाकर कोंटा शिविर में रखा। कुछ ही देर के बाद एक और दल आ धमका, जिन्होंने 20 लोगों को पकड़कर गांव के बाहर ले जाकर अंधाधुंध पीटा। नगा पुलिस वालों ने तो रायफलों के कुंदों से मनमाने ढंग से मारा। पेड़ों की टहनियां तोड़कर उनसे पीटा, माचिस की तीलियां जलाकर उनके शरीर को जगह-जगह जलाया। इस प्रकार सभी को थोड़ी देर तक 'जहन्नुम' का मजा चखाने के बाद यह बताकर छोड़ दिया कि वे सब जुड़ूम में शामिल हो जायें, शामिल होने से ही ऐसी मार से छुटकारा मिल सकता है।

चूंकि इसके बावजूद भी इस गांव से कोई भी जुड़ूम में शामिल नहीं हुआ, इसलिये फिर एक बार इस गांव पर धावा बोलकर सारे घर जला दिये। लोगों ने पहले ही गांव खाली कर दिया था, इसलिये कोई उनकी पकड़ में नहीं आया। लेकिन उसी समय अड़माल नामक व्यक्ति किसी काम से गांव की तरफ गया था तो उन्होंने उसकी हत्या कर दी। ग्रामवासियों ने बताया कि अड़माल के शरीर पर गोलियों के तीन निशान थे और देखकर लग रहा था कि उसे पकड़कर नजदीक से गोली दागी गई।

इस प्रकार हमले का शिकार होने के बाद भी लोगों ने दो महीनों तक पेड़ों के नीचे ही ज़िंदगी गुजारी। मिट्टी की हाड़ियों में खाना पकाकर, पत्तों का दोना बनाकर उनमें खाते रहे। फिलहाल एक-एक जगह दो-तीन के हिसाब से कुल पांच जगहों पर झोपड़ियां बनाकर सभी लोग उन्हीं में सिमटकर गुजर-बसर कर रहे हैं। इन झोपड़ियों के नजदीक दो जगहों पर छोटे-छोटे दो झरने हैं। इनमें पर्याप्त पानी नहीं मिल रहा है। इसलिये लोग गंदा पानी पीने को मजबूर हैं। फिलहाल यह गंदा पानी ही उनके लिये एक मात्र आसरा है। जंगल में इधर-उधर रखा हुआ अनाज भीग रहा है। गांव के एक ओर स्थित जमीनों को छोड़ कर दूसरी ओर स्थित जमीनों पर खेती कर रहे हैं। चूंकि मवेशी डरकर भाग तितर-बितर हो गये, इसलिये खेत जोतने के लिये कई लोगों के पास बैल नहीं हैं। स्कूलों में रहने वाले बच्चों को जुड़ूमी गिरोह या तो मार डाल रहे हैं या फिर उठा कर 'राहात शिविरों' में डाल रहे हैं। इसलिये इस गांव के सभी बच्चों को उनके अभिभावक स्कूल से वापस ले आये हैं। अब उनकी शिक्षा-दीक्षा लगभग ठप्प हो चुकी है।

पेट भरने वाली जमीनें गंवाकर 'कल कैसे जियें' वाली स्थिति में, मवेशियों को खोकर रही सही जमीन पर भी खेती न कर पाने की हालत में, सुरक्षित मकान गवांकर पेड़ों के नीचे गुजर-बसर करने की स्थिति में, तीन-तीन नलकूपों से दूर होकर गंदा पानी से ही प्यास बुझाने की स्थिति में, अभी-अभी शुरू हुई स्कूली शिक्षा से वंचित होने की बदतरी में इन्हें खुद सरकार ने धकेल दिया है।

इस तरह सरकार एक तरफ विकास को नोच रही है, दूसरी तरफ उस क्रांतिकारी आन्दोलन को 'विकास-विरोध ी आन्दोलन' बता रही है, जिसके माध्यम से जनता ने यह विकास हासिल किया था।

जाने कितने सामाजिक बंधन!

यहां के समाज के विकास को सलवा जुड़ूम कैसे कुचल रहा है, इसके बारे में मैंने अभी तक मुकुमतोम गांव के उदहारण से बताया है। शायद यह पुनरावृत्ति लग सकती है, पर मैं इसी विषय के बारे में और थोड़ा विस्तार से बताना चाहती हूं। मैं समझती हूं कि इससे इस बात को और ज्यादा समझने में मदद मिल सकती है कि सलवा जुड़ूम यहां की जनता पर कितने प्रकार के सामाजिक बंधन थोप रहा है।

हमारा दौरा शुरू होने के 4-5 महीने पहले, सलवा जुडूम से प्रभावित इलाके से कुछ दूर स्थित एक गांव के पास हम लोग रुके हुये थे। एक दिन सुबह-सुबह दस साल की एक छोटी सी लड़की हमारे डेरे के बगल से जाते हुये दिखाई दी, जिसके एक हाथ में एक कटोरा था और दूसरे हाथ में एक छोटी सी छुरी थी। उस लड़की को हमने थोड़ी देर के लिये रोका। 'कहां जा रही हो?' को कोया (या गोंडी) भाषा में कैसे कहना है, तब तक मैं सीख चुकी थी। इसलिये मैंने खुद ही उससे पूछ लिया, तो उसने बताया कि वह जंगल जा रही है। "क्यों" मैंने पूछा तो उसने बताया कि "गोंद के लिये।" उस नन्ही सी लड़की को अकेली ही जंगल जाते हुये देख मैंने अपने साथी कॉमरेड से कोया शब्द जानकर पूछा कि 'क्या तुम्हें डर नहीं लगता?' जवाब में उस नन्ही बच्ची मेरी तरफ एक भावरहित नजर फेंककर चलती बनी। हालांकि उस लड़की ने अपनी नजर में कोई भावना तो व्यक्त नहीं की, पर उसके बाद इस तरह अकेले ही जंगल जाने वाले कई अन्य बच्चों को देखने के बाद मुझे कई बार ऐसा लगा कि उस बच्ची के मन में शायद यह भावना आई होगी कि "डर! डर किस बात का?"

बाहरी दुनिया में ऐसी स्थिति है कि अगर बच्चे स्कूल से कुशलतापूर्वक लौटते हैं तो मां-बाप की जान में जान आती है। कहीं काम पर जाने से पहले लड़कियों को तो पड़ोसी के घर में छोड़कर जाना भी खतरे से खाली नहीं है। पड़ोसी के घर ही क्यों? आज की तारीख में अपने खुद के घर में भी सुरक्षा का अभाव है। ऐसे में यहां पर अकेले ही जाने वाले बच्चों को देखकर यह कहे बिना नहीं रह सकी कि "यह समाज कितना सुरक्षित है!" ठीक है, इंसानों का डर तो नहीं होगा पर खूंखार जानवरों का डर भी नहीं लगता? मैंने एक कॉमरेड से पूछा तो उन्होंने बताया कि इस जंगल में कोई खास क्रूर जानवर ही नहीं है। मुझे लगा, रहेंगे तो भी शायद नहीं डरेंगे।

जो इलाका मुझे इतना सुरक्षित लगा था, वहां से महज 10-15 किलोमीटर दूर जाने पर मैंने ऐसे समाज का सामना किया जहां सुरक्षा का घोर अभाव है और लोग अपनी सुरक्षा के लिये भागमभाग इधर-उधर दौड़ रहे हैं। जहां पर वे पैदा हुये, पले-बढ़े, उन्हीं गांवों और खुद के घरों को सुरक्षा के अभाव के कारण छोड़ देना पड़ा है उन्हें। हालांकि अब जंगल में किसी गोपनीय जगह पर रह तो रहे हैं लेकिन हर पल हमलों का खतरा है।

वेल्लुम गांव की रुकमणी, मकडी और पोञ्जे तीन महिलाएं जब कोंटा में पढ़ रहे अपने बच्चों को देखने जा रही थीं तब बंडा गांव के पास जुडूम का गिरोह मिला और उन्हें बुरी तरह पीटा। इससे ये महिलायें इतनी भयभीत हुई कि अब वे कहीं भी कदम बढ़ाने से पहले चार-बार सोचती हैं। लेकिन कहीं भी जाये बगैर घर में रहने की स्थिति भी नहीं है यहां। दरअसल यह घटना इस इलाके में जुडूम के शुरूआती दौर में घटी थी। अब तो कोंटा जैसे इलाकों में जाना ही मुश्किल है। और पहुंच गए तो वापस आना लगभग नामुमकिन है।

क्या सिर्फ कोंटा जैसे इलाकों में ही नहीं जा सकने की स्थिति है?

पहले ही गांव खाली कर जंगल में रह रही नीलममडुगू गांव की माडिवी आडिमे (50), मुसकी इडिमे, (35) मुसकी देवे (60) और कोरम कन्नी (20) जब पानी लाने के लिये झरने के पास गई थीं, जुडूम के गिरोह ने उन्हें वहीं पकड़ ले जाकर शिविर में रखा। इप्पागुडेम गांव का सोड़ी मुत्ताल जो अपना गांव कब का छोड़ चुका था, पानी के स्रोत के पास जाकर जुडूम के हथ्थे चढ़ बैठा। उसने उसकी क्रूरतापूर्वक हत्या कर दी। एंडम गांव अभी तक जुडूम के हमले का शिकार नहीं हुआ। फिलहाल सुरक्षित है। लेकिन इस गांव का एक शिक्षक वेतन लाने के लिये कोंटा गया था जो अभी तक लौट कर नहीं आया। जब हम उस गांव में गये थे तो उसके परिवार वालों ने गहरी चिंता व्यक्त करते हुये यह बात बताई।

इस प्रकार की कितनी घटनायें बताऊं....? घर में, जंगल में कहीं भी सुरक्षा के घोर अभाव में जनता को हर पल खतरों का अनुमान लगाते हुये जीना पड़ रहा है। इसलिये हमारे सफर के दौरान ऐसे कई मौके आये जब लोगों ने हमें देखकर जुडूम वाले समझकर भागने की कोशिश की। हालात ने यहां की जनता को कई किस्म के सामाजिक बंधनों में जकड़ लिया है।

शासक वर्गों द्वारा तिरस्कृत होकर पिछड़े हुये इन इलाकों को विकसित करने की प्रक्रिया यहां पर क्रांतिकारी आंदोलन ने ही शुरू की। इसके तहत यहां के उत्पादन की पद्धति को विकसित किया जा रहा है। यहां की खेती पूरी तरह से बारिश के पानी पर आधारित है। कुछ अरसा पहले तक वह भी प्राथमिक अवस्था में थी। लेकिन यहां पर क्रांतिकारी आन्दोलन के माध्यम से खेती की पद्धति में कुछ सुधार लाकर, पानी की सुविधा मुहैया करवाकर, सहकारिता की प्राणली लागू करवाकर कृषि क्षेत्र में विकास किया जा रहा है। सभी लोगों को जमीनें उपलब्ध करवाई जा रही हैं। इतना

ही नहीं, कृषि में उपयुक्त पशुओं को खाने में प्रयोग करने की आदतों को हतोत्साहित किया जा रहा है। शिकार के शौकीन आदिवासी जनता को ज्यादा समय शिकार में गंवाने की बजाए उन्हें खेती-किसानी की तरफ मोड़ा जा रहा है। कई प्रकार की फसलें उगाना सिखाया जा रहा है। परिणामस्वरूप यहां पर कृषि में कुछ हद तक विकास हुआ है। इस विकास से जनता की आर्थिक स्थिति में आई बेहतरी को यहां पर साफ तौर पर देखा जा सकता है।

लेकिन अब जुड़ूम के हमलों के कारण बहुत सारी जमीनें बंजर हो चुकी हैं। अपना गांव छोड़कर दूसरे गांव जा बसने वाले जुड़ूम पीड़ितों को उस गांव के लोग कुछ जमीनें दे रहे हैं। लेकिन गाय-बैल गंवाने के कारण कई पीड़ित लोगों को उन जमीनों पर भी खेती करना मुश्किल हो रहा है। एक और दुखद बात यह है कि उन्होंने अभी तक जिन मवेशियों को खेती के लिये पाला-पोसा, अब जबकि वे उनके हाथ में नहीं आ रहे हैं, तो असहाय होकर उन्हें खुद ही शिकार करके खाना पड़ रहा है।

वनोपजों का संग्रहण भी यहां के सामाजिक उत्पादन का अहम हिस्सा है। जब आंदोलन मजबूत नहीं था तब व्यापारी और दलाल पूंजीपति वनोपजों को बेहद सस्ते दामों में खरीद कर आदिवासियों के श्रम को लूटते थे। लेकिन आंदोलन की बदौलत इस लूट को रोका गया। इससे भी यहां की जनता की आर्थिक स्थिति में उल्लेखनीय तरक्की हुई है।

लेकिन जुड़ूम के हमलों से लोग अपने ही जंगल में खुलकर विचरण नहीं कर पा रहे हैं, जिससे पीड़ियों से वनोपजों के संग्रहण पर निर्भर करते आ रही जनता उससे दूर कर दी गई है।

जुड़ूम द्वारा जकड़े गये सामाजिक बंधनों के चलते शिक्षा किस प्रकार बाधित हो रही है, इसके लिये मुकुमतोम गांव के उदहारण से मैंने पहले ही बताया। इस पर थोड़ा और बताया जाये, तो सच्चाई यह है कि सरकार ने आदिवासियों को शिक्षा की जरूरत कभी महसूस ही नहीं की। लेकिन क्रांतिकारी आंदोलन ने इस जरूरत को समझा और हरेक पंचायत स्तर की जनताना सरकार के दायरे में एक प्राथमिक पाठशाला चलाई जा रही है। सिर्फ दक्षिण बस्तर डिवीजन की ही बात की जाये तो इस प्रकार की पाठशालायें 80 तक हैं। यही नहीं, दो-तीन आश्रमशालाओं को भी संचालित किया जा रहा है। इन शालाओं में पढ़ने वाले बाद में अपने निकटस्थ इलाकों में जाकर उच्चतर शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। लेकिन जुड़ूम के शुरू होने के बाद गांव गांव ही नहीं रह गये तो स्कूलें कैसे बचेंगी? विभिन्न इलाकों में पढ़ने वाले बच्चों को भी जुड़ूम के गिरोहों द्वारा अपहरण, हत्या, आदि की जा रही है। इसलिये कई माता-पिता अपने बच्चों को स्कूलों से वापस ला रहे हैं। जिन बच्चों को इस तरह लाया गया उन्हीं को जिंदा हैं कह सकते हैं। जिन्हें अभी तक नहीं लाया गया, वे जिंदा हैं भी या नहीं किसी को नहीं मालूम। इस प्रकार अभी-अभी शुरू हुए शिक्षा के प्रसार का काम अब ठप्प पड़ा हुआ है।

यहां पर चिकित्सा के बारे में भी थोड़ा ज्यादा विस्तार से बताने की जरूरत है। देश में कहीं भी आदिवासियों की दवायें जड़ी-बूटी और पत्तों के रस ही होती हैं। देश में कहीं भी अगर आदिवासी अंग्रेजी दवायें खा रहे हैं, तो बेशक उसे नक्सलवादी आन्दोलन की देन बता सकते हैं। हरेक गुरिल्ला दल के पास दवाओं का किट रहता है। किसी भी गांव में किसी भी काम से गुरिल्ले जाते हैं तो उसमें लोगों को दवा-दारू देने का कार्यक्रम जरूर शामिल रहता है। किसी काम से कोई सदस्य गांव जाता या जाती है तो लोग उससे अपनी तकलीफों के बारे में बातें करते हैं, मानो मरीजों को कोई डाक्टर मिला/मिली हो। मां-बाप अपने बीमार बच्चों को लेकर आस बांधकर आते हैं। ऐसे मौकों पर आपात जरूरतों के लिये जेब में रखी हुई दवायें भी लोगों को बांटने के अनुभव हर नक्सलवादी को हैं। कहीं दूर डेरा लगाये हुये गुरिल्ला दल का पता लगाकर इलाज के लिये लोगों का दौड़-दौड़ कर आना यहां आम बात है। ऐसे मौकों पर भी जब मरीजों के बचने की उम्मीदें लगभग खत्म हो चुकी हों, आखिरी वक्त में इलाज पहुंचाकर सचमुच दोबारा जीवन प्रदान करने की घटनायें क्रांतिकारी आंदोलन के चिकित्सकीय इतिहास में अनगिनत होंगी। इसीलिये दस्ता सदस्य जो दवायें देते हैं उन पर लोग बेहद भरोसा करते हैं। कॉमरेड्स ऐसे कई लोगों के बारे में हंसकर बताते हैं कि जो सरकार के 'मेलरिया बाबू' की दी हुई गोлияयां फेंक देते हैं और दस्ता सदस्य जब वही क्लोरोक्विन की गोलिएयां देते हैं तो विश्वास के साथ ले लेते हैं। दण्डकारण्य में जहां क्रांतिकारी आंदोलन का अपेक्षाकृत ज्यादा विकास हुआ है, पार्टी ने सिर्फ जनता के इलाज के लिये कुछ विशेष टीमें गठित की हैं। ये टीमें गांव-गांव जाकर लोगों का इलाज-पानी करती हैं। जहां जरूरत है वहां चिकित्सा शिविर चलाती हैं। जनता को चिकित्सा सुविधायें मुहैया कराने में बुरी तरह विफल साबित हुई सरकारें दमन का प्रयोग कर लोगों को मिल रही चिकित्सा की सुविधाओं को भी बाधित कर रही हैं।

सलवा जुड़ूम के शुरू होने के बाद बीमारियां भी बढ़ गईं और मरने वालों की संख्या भी। क्योंकि अब उन्हें पहले

की तरह नलकूपों का स्वच्छ पानी पीने और उससे नहाने का मौका नहीं है। सिर छुपाने के लिये घर का अभाव में धूप में सूखते और बारिश में भीगते रहना लोगों की मजबूरी है। अनाज पूरा नष्ट होने से उन्हें खाने के लाले पड़ रहे हैं। इन सभी के परिणामस्वरूप बीमारियां बढ़ी हैं। जहां भी हम गये वहां हमने ऐसे कई लोगों को देखा जो बुखार, खांसी, जुकाम, चर्म रोग, आदि बीमारियों से पीड़ित थे।

बीमारियों का प्रकोप कितना ज्यादा है इसे समझने के लिये मैं एक वाकिया बताऊंगी। आदिवासी नाच-गाने पर जान छिड़कते हैं। हम जब मुकुमटोम के ग्रामीणों से मिले तब हमारे साथ सीएनएम (चेतना नाट्य मंच-दण्डकारण्य का सांस्कृतिक संगठन) की टीम भी थी। जनता के साथ हमारी बातचीत पूरी होने के बाद उस टीम ने सांस्कृतिक कार्यक्रम देना शुरू किया। बहुत दिनों से लोग नाच-गाने से दूर रह रहे थे। इसलिये सभी उत्सुकता के साथ देख रहे थे। इतने में कुछ लोगों की नजर वहां से थोड़ी ही दूर पर मौजूद एक कॉमरेड पर पड़ी जो दवाओं का किट खोलकर किसी को दवायें दे रहा था। बस, वे सभी उठकर उस 'डाक्टर' के पास चले दिए इलाज करवाने! कुछ ही पलों में सांस्कृतिक प्रदर्शन देखने के लिए हमारी टीम के सिवाय कोई नहीं रह गया। सभी दवाएं लेने चले गए। इससे सीएनएम के कॉमरेडों ने थोड़ा निराश होते हुये अपना प्रदर्शन समाप्त किया। मैंने कई बार यह देखा था कि एक तरफ मीटिंग या सांस्कृतिक कार्यक्रम चलता है तो दूसरी तरफ इलाज का काम भी चलता रहता है। लेकिन इस तरह सांस्कृतिक कार्यक्रम के सामने से सभी लोगों का उठकर जाना, यह मैंने पहली बार देखा।

जब हम चिंतागुफा नामक गांव गये थे तो हमने एक 20 साल की लड़की देखी। 15 दिन पहले उसने एक बच्चे को जन्म दिया था जो प्रसव के दौरान ही चल बसा। वह लड़की इतनी पीली पड़ी हुई थी, जैसे उसके शरीर में खून ही नहीं बचा हो। उसे देखते ही मैं समझ गई कि उसका बच्चा क्यों मरा होगा। फिलाहल वह लड़की श्वेतप्रदर से बुरी तरह परेशान है। उस लड़की को देख मैं खुद को बेहद असहाय सी महसूस करने लगी। उसका इलाज करने लायक ज्ञान हममें से किसी को भी नहीं है। यह गांव कोंटा से ज्यादा दूर भी नहीं है। इतनी गरीबी भी नहीं है कि जान जाने की स्थिति में भी अस्पताल नहीं ले जाया जा सके। तब तक यह गांव सलवा जुडूम के हमले का शिकार भी नहीं हुआ था। लेकिन उन्हें कोंटा जाना है तो सलवा जुडूम की घेराबंदी से गुजर कर जाना होगा। वे यह साहस कैसे करें? अपने पास मौजूद एंटीबायोटिक्स, बी-कांप्लेक्स और आयरन की गोलियां हमने उस लड़की को दीं। वे गोलियां उस लड़की को बचा सकीं या नहीं? या अब तक वह लड़की मौत के मुंह में समा गई होगी, यह चिंता ना चाहने पर भी मेरे मन में रह-रहकर उठने लगती है।

एक और गांव में हमारे डेरे के पास 7-8 साल के एक बच्चे को लाया गया था। उसके कान में संक्रमण था। शायद उन लोगों ने उसमें कोई रस-वस डाला होगा। हमारे पास मौजूद मेडिकल किट में बहुत दूढ़ने पर हाईड्रोजन पेराक्साइड की दो-तीन बूंदें मिलीं। उन्हें कान में डालकर मैंने पहले उस बच्चे का कान साफ किया। साफ करते समय कान से जो दुर्गन्ध निकली उससे मुझे उबकाई होने लगी। कान साफ करने के बाद उसमें डालने के लिये हमारे पास कोई दवाई नहीं थी। कुछ एंटीबायोटिक गोलियां देकर उस बच्चे की मां को हमने समझा दिया कि उन्हें कैसे देना चाहिये। उसका कान अब ठीक हो गया होगा क्योंकि बाद में मुझे मेडिकल टीम के साथी मिले थे तब मैंने उस 'केस' के बारे में बताया। उन लोगों ने उसका इलाज किया होगा। लेकिन मुझे फिर भी आशंका है कि वह बच्चा बहरा हो चुका होगा क्योंकि संक्रमण से उसका कान पहले ही खराब हो गया था। यह दरअसल बहुत ही छोटी सी समस्या है बशर्ते उसका इलाज समय पर हो जाये। लेकिन वर्तमान परिस्थितियों में यह इतनी बड़ी समस्या है कि शायद वह सुनने की क्षमता से हमेशा के लिये हाथ धो बैठे।

एक और गांव में एक महिला अपने 2-3 साल का बच्चा लेकर आई। उसका पूरा शरीर फोड़े-फुन्सियों से पटा हुआ था। उसका रंग गोरा था ठीक अपनी मां की तरह। बड़ी-बड़ी आंखों से बड़ा सुंदर लग रहा था। स्वस्थ रहता तो अमूल बेबी भी उसके सामने उन्नीस ही पड़ेंगी। लेकिन फिलहाल हड्डियों के ढांचे पर फुन्सियों से भरे एक पतली सी चमड़ी के अलावा वह कुछ नहीं था। बड़ी-बड़ी आंखों से बेजान सी नजरें! बाद में मैंने उसकी मां को गौर से देखा तो उसके शरीर पर भी खुजली की फुन्सियां दिखाई दीं। जब मैंने यही बात उससे पूछी तो उसने बताया कि घर में सभी लोग फुन्सियों से परेशान हैं। चूँकि बच्चे की उम्र छोटी है इसलिये खुजली ने उसे पूरी तरह खा लिया है। हमारे पास जो कुछ एंटीबायोटिक गोलियां बची थीं, सभी उसके हाथों में रख दीं। हमने समझाया कि सभी लोग इन्हें खा लें। साथ ही साथ, हल्दी लगाकर गर्म पानी से नहाने की हिदायात दी। हमने ज्यादा कुछ सोचे बिना ही यह हिदायात तो दे दी पर ऐसा नहाना उनके लिये नामुमकिन है। क्योंकि इस तरह फुरसत से नहाने का मौका ही कहाँ है भला!?

छुप-छुपकर पानी की झिरिया के पास जाकर गंदा पानी से ही झटपट नहा लेना उनकी मजबूरी है। दरअसल खुजली कितनी छोटी समस्या है? लेकिन फिलहाल वह भी उनके लिये जानलेवा समस्या बन गई है। जब-जब उस मासूम बच्चे का चेहरा मुझे याद आता है मेरा मन उदास हो जाता है। क्या बेजान नजरों की भी इतनी ताकत होती है? क्योंकि वो नजरें अभी भी मेरा पीछा कर रही हैं।

बाद में उस इलाके में घूमने वाली मेडिकल टीम के साथ हमारी मुलाकत हुई। उस टीम के प्रभारी का. प्रदीप से मैंने उन तमाम मरीजों के बारे में बताया जिनका मुझे सामना करना पड़ा। उनमें से कई लोगों के बारे में पहले से ही का. प्रदीप को खबर थी। कुछ का उन्होंने पहले से इलाज शुरू किया हुआ था। प्रदीप ने भारी मन से मुझे बताया “दवाईयों की बेहद कमी है। पहले जैसे दवाईयां मंगवाने की स्थिति भी अब नहीं है। इसके साथ-साथ, हम पहले 4-5 गांवों के लोगों की पहुंच में एक शिविर लगाकर कुछ दिनों तक लोगों का इलाज किया करते थे। लेकिन अब तो एक दिन भी एक जगह शिविर चलाने की स्थिति ही नहीं है। एक दिन भी शिविर चलाने पर हमें जुड़ूम के हमलों का शिकार होना पड़ रहा है। इसलिये हम दवायें देकर वापस जा रहे हैं। इन दवाओं से बीमारियां कम हो रही हैं या नहीं इसकी तसदीक करने का मौका ही अब नहीं मिलता। जब दोबारा जायेंगे तभी जानकारी मिल सकती हैं।”

जब मैं यह लिख रही थी तो मुझे यह दुखद समाचार मिला की यह कॉमरेड प्रदीप जुड़ूम के हमले में शहीद हो गये हैं। इतने भीषण दमन के बीचोंबीच भी जनता का इलाज करने के लिये अथक प्रयास करने वाले ऐसे जन डाक्टरों की हत्या करने वाली सरकारें जनता को उपलब्ध चिकित्सा सुविधाओं को भी बाधित कर रही हैं।

इस प्रकार बताते चलूं तो ऐसा लगता है कि न जाने कितने पहलुओं से सलवा जुड़ूम जनता के जीवन को प्रभावित कर रहा होगा।

अपना भविष्य हम खुद संवार लेंगे

जब मैं एक और गांव में थी तभी उस गांव में जनताना सरकार (यहां गठित हो रही क्रांतिकारी जन सत्ता की कमेटियों को ‘जनताना सरकार’ कहा जाता है – कोया भाषा में इसका अर्थ है ‘जनता की सरकार’) का चुनाव संपन्न हुआ। उस बैठक में मुझे भी शामिल होने का मौका मिला। चुनाव के पहले निवर्तमान जनताना सरकार कमेट्री ने अपने दो साल के शासन की समीक्षा की थी। उस बैठक में मैं भी बैठी थी। एरिया पार्टी कमेट्री की तरफ से का. ज्योती ने उस बैठक का संचालन किया। (का. ज्योती का जन्म इसी इलाके में हुआ। जब क्रांतिकारी आंदोलन की शुरूआत हुई थी तब वह सामान्य गृहिणी थी। अपने पति के साथ मिलकर वह पार्टी में आईं। बाद में उनके पति कमजोर हुये और पार्टी छोड़कर चले गये। लेकिन का. ज्योती दृढ़तापूर्वक डटी हुई हैं।) उन्होंने जनताना सरकार और जनताना सरकार कमेट्री के सदस्यों की खामियों और कमजोरियों के बारे में विस्तार से बात रखी। सभी कमेट्री सदस्यों ने उसका एकमत से अनुमोदन किया।

उसके बाद पूरी कमेट्री ने जनता के सामने आत्मालोचना पेश की। सुरक्षा कमेट्री की तरफ से उसके प्रभारी ने बताया कि संतरी (पहरेदारी) के संचालन में कमजोरियां चल रही हैं। खासकर बारिश के मौसम में पहरेदारी करने में दिक्कत हो रही है क्योंकि इसके लिये अलग से एक झोपड़ी नहीं है। विकास कमेट्री के प्रभारी ने बात रखी कि स्कूल संचालन ठीक-ठाक नहीं हो पा रहा है। जंगल बचाव कमेट्री की प्रभारी ने लोगों से जुर्माने के तौर पर वसूल किये गये पैसों का ब्यौरा बताया। न्याय कमेट्री के प्रभारी ने अपने द्वारा चलाये गये पंचों के बारे में बताया। बाद में जनता से आलोचना मांगी गई तो एक भी नहीं आई। एक भी आलोचना नहीं होने से इसका मतलब यह नहीं हो सकता कि उनकी यह सरकार बिल्कुल दोष मुक्त है। हो सकता है जनता में गलतियों को पहचानने की चेतना नहीं बढ़ी हो। लेकिन मुझे यह जरूर लगा कि जनता को अब तक देखी गई बुर्जुवाई सरकारों के बनिस्बत यह सरकार उन्हें कई गुना अधिक भा गई होगी। खासकर जंगल बचाव विभाग की जिम्मेवार महिला कॉमरेड जब लोगों से यह पूछ रही थी कि “अगर मैंने किसी पर अन्यायपूर्वक जुर्माना लगाया है तो बताइयेगा”, तो सभी ने एक स्वर में कहा “नहीं, नहीं।” बाद में न्याय कमेट्री के प्रभारी ने लोगों से यह पूछा कि “पंचों के निपटारे के समय अगर मैंने किसी से दारू वगैरह मांगा होगा तो बताइयेगा”, तो सभी ने एक बार फिर एक स्वर में “नहीं” शब्द को दोहराया। अतीत में पत्ता तोड़ने पर भी मारपीट से लेकर जुर्माना तक भरकर, अपमान झेलकर, कड़ी सजाएं भी पाने वालों को इस सरकार का कामकाज न जाने कितना अच्छा लग रहा होगा? पंच के नाम से दोनों पक्षों से दारू, सलफी, मुरगा, बकरा, आदि एंठने वाले मुखियाओं को देख चुकी इस जनता को यह न्याय कमेट्री कितनी न्यायपूर्ण लग रही होगी? शायद इसीलिये उन्होंने इस सरकार की गलतियां नहीं बताई होंगी। इतना ही नहीं, इस सरकार कमेट्री में बिना किसी बदलाव के सभी को फिर दो साल के लिये चुन लिया

गया। हालांकि का. ज्योती ने बार-बार लोगों को यह सुझाया कि “फिर से इन्हीं लोगों को चुनना जरूरी नहीं है। दूसरे लोगों को भी चुना जा सकता है।” लेकिन लोगों ने यह कहकर उनकी तारीफ की “दूसरे लोग क्यों? इन्होंने ठीक ही काम किया है।”

इतना ही नहीं, जनताना सरकार कमेटी के द्वारा जिन खामियों के लिये आत्मआलोचना पेश की गई, उन्हें दूर करने लिये जन सभा (मतदाताओं और सरकार कमेटी को मिलाकर ‘जन सभा’ बुलाई जाती है) ने फौरन ही कुछ फैसले लिये। पहरेदारी में हो रही गलतियों को सुधारने के लिये यह फैसला लिया गया कि बारिश के दिनों के लिये अलग से एक झोपड़ी बनाई जाये। फिलहाल जनताना सरकार की यह हैसियत नहीं है कि सभी गांवों में स्कूल चला सके, क्योंकि शिक्षकों का अभाव है। आमतौर पर 3-4 गांवों के लिये एक ही स्कूल है। लेकिन कुछ बच्चे बीच में ही स्कूल छोड़ रहे हैं, क्योंकि बारिश के दिनों में बच्चों को नदी-नाले पार करते हुए दूसरे गांवों में जाना मुश्किल हो रहा है। इस समस्या पर सभा में गहन चर्चा के बाद यह फैसला लिया गया कि बारिश के समय बच्चों को नदी-नाले पार करवाकर स्कूल पहुंचाने की जिम्मेदारी बड़ों को लेनी होगी। इस सभा में लिये गये फैसलों में एक पर अमल तुरंत ही शुरू हुआ। सभा की अगली ही सुबह उस गांव में हलचल मच गई थी। सभी लोग जोशोखरोश के साथ संतरी के लिये झोपड़ी बनाने के काम में जुट गये। कोई लंबी-लंबी लकड़ियां लाने गये तो कुछ लोगों ने ताड़ के पत्ते ढोकर लाये। यह सब मेरे लिये सुखद आश्चर्य था। मुझे यह प्रत्यक्ष देखने को मिला कि अगर शासन में जनता की भागीदारी हो तो शासन कितना सुचारू ढंग से चल सकता है।

अपनी जिंदगी संवरने के लिये जनता द्वारा गठित की जा रही ये सरकारें भले ही आज भ्रूण अवस्था में हों, पर उनका एक मात्र उद्देश्य जन कल्याण है। अब तक ग्राम और इलाका (एरिया) स्तर पर गठित हो चुकी ये सरकारें खूब काम कर रही हैं ताकि सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक मामलों में जनता का विकास किया जा सके। बुर्जुवाई सरकार की नीतियों के कारण अब तक बेहद पिछड़ेपन से ग्रस्त इस इलाके में हाल के वर्षों में हासिल विकास पूरा जनताना सरकारों की ही अगुवाई में हुआ है। ये और मजबूत होंगी, और व्यापक होंगी तो यह समाज काफी प्रगति हासिल कर सकता है। लेकिन इस विकास को बर्दाश्त न करने वाली बुर्जुवाई सरकार इन जनताना सरकारों का सफाया करने में जुटी है क्योंकि ये जनता के पक्ष में खड़ी हैं।

इन गांवों और इन सरकारों को ध्वस्त करते हुये सलवा जुद्ध एक बहुत बड़ी प्रगति को रोकने की कोशिश कर रहा है। इसे रोककर वह जनता के सामने कौन सा विकास रख रहा है?

अपना शासन खुद करने की क्षमता रखने वाली इस जनता को शिविरों में रख कर पराधीन बना रहा है। सुंदर भविष्य की नींव डाल सकने का दमखम रखने वाली युवा पीढ़ी को एसपीओ (विशेष पुलिस अधिकारी) बनाकर न सिर्फ उनके बल्कि समूचे समाज के भविष्य को तबाह करने वाले विध्वंसक बना रहा है। कल को जनता के इन जंगलों को और यहां की संपदाओं को साम्राज्यवादियों के हाथों में सौंपकर उनके द्वारा खोले जाने वाले कारखानों और खदानों में यहां की जनता को दिहाड़ी मजदूर बनाना चाह रहा है।

लेकिन इन साजिशों को परास्त करने के लिये भ्रूण रूप में ही मौजूद ये जनताना सरकारें क्रूर बुर्जुवाई सरकार से एक भीषण लड़ाई के लिये कमर कस रही हैं।

क्या ‘आसमान के आधे हिस्से’ को मुट्ठी में बांधना मुमकिन है?

जब हमारा दौरा चल ही रहा था शहीद सप्ताह (28 जुलाई से 3 अगस्त तक) आया। गांव-गांव में शहीदों की याद में सभायें होने लगीं। हमें भी इन सभाओं में भाग लेने का मौका मिला। हमने एंडम नामक गांव में पंचायत स्तर पर आयोजित एक सभा में भाग लिया। उसी गांव में पल-बढ़ कर आंदोलन में काम करने के दौरान शहीद हुये मनोज नामक कॉमरेड का स्मारक गांव के बीचोंबीच ग्रामीणों द्वारा बनाया गया। उस दिन स्मारक के अनावरण का कार्यक्रम भी था। सभा के शुरू होने से काफी पहले ही हम वहां पहुंचे थे। चूंकि बारिश का समय था इसलिये रुक-रुककर बूंदबांदी हो रही थी। फिर भी लोग कारवां बना-बना आते ही गये। इस तरह एक हजार लोग इकट्ठा हुये। सभी के पहुंचने के बाद रैली की तैयारियां शुरू हुईं। वलंटियर सभी को प्लेकार्ड, बैनर, झंडे आदि बांटते हुये लोगों को कतारबद्ध करने में व्यस्त थे। मेरी नजरें काफी देर तक एक व्यक्ति पर ठहरी हुई थीं जो उस पूरे समारोह की सक्रिय देखरेख करते

हुये, इधर-उधर घूमते हुये व्यस्त है। लेकिन जब तक वह मेरे नजदीक आकर मुंह खोलकर कुछ नहीं बोली तब तक मुझे यह समझ में नहीं आया था कि वह व्यक्ति दरअसल एक महिला थी। करीब 35 साल की होंगी वह। लुंगी और कमीज पहनी हुई थीं। उनके नाक, कान, हाथ में एक भी गहना नहीं था इसलिये मैं उसे पुरुष समझ रही थी। मैं अब उनके बारे में जानकारी जुटाने से खुद को रोक नहीं पाई। पता चला कि वह 4-5 गांवों को मिलाकर बनी जनताना सरकार की अध्यक्ष हैं। बाद में उन्होंने मंच पर खड़े होकर हाथ पीछे की तरफ करके काफी गंभीर, संजीदा और जोशीला भाषण दिया। कॉमरेड मनोज की याद करते हुये उनकी आंखें भर आईं। बाद में उन्होंने उस सरकार के प्रति गुस्से का इजहार करते हुये भाषण को आगे बढ़ाया जो उन पर सलवा जुड़ूम थोप रही है। सलवा जुड़ूम को पराजित करने की जरूरत पर जोर देते हुये उन्होंने बात रखी। जब तक वह बोलती रहीं तब तक मैं पलक झपकाना तक भूल गई। मैंने यह भी गौर से देखा कि सारी जनता उनके भाषण को ध्यानपूर्वक सुनती रही।

सभा के समापन के बाद जब पूरी जनता लौट गई, मैंने उनके पास जाकर अपना परिचय दिया। वह अपने गांव जाने के लिये सायकल पर सवार होने ही वाली थीं। मैंने उनके सामने प्रस्ताव रखा कि वह रात में हमारे पास रुक जायें ताकि बातचीत कर सकें। वह तुरंत मान गईं। रात में मैंने कॉमरेड भीमे की मदद से उनके साथ बात की तो उन्होंने अपने ढेरों अनुभवों को मुझसे सांझा किया। उनका नाम सुकड़ी है। जब आंदोलन की शुरुआत हुई तब वह बहुत छोटी सी थी। बता रही थीं कि तब वह गुरिल्ला दल को देखकर डरती थी। जल्द ही डर दूर हुआ और वह महिला संगठन की सदस्या बन गईं। बाद में शादी कर ली। लेकिन पति ने एक और महिला से शादी कर ली तो सुकड़ी उससे अलग हो गईं। बाद में जन संगठन की गतिविधियों में सक्रिय होकर एरिया अध्यक्ष बनीं। फिलहाल वह पंचायत स्तर की जनताना सरकार की अध्यक्ष के तौर पर काम कर रही हैं। अपनी गतिविधियों में तेजी लाने के प्रयासों के तहत उन्होंने सायकल चलाना सीख लिया। अब वह इस पंचायत के गांवों में काफी लोकप्रिय महिला हैं। मैंने उनसे कई सवाल किये। एक महिला होने के कारण समाज उन्हें कैसे स्वीकार कर रहा है? सरकार के अन्य कमेटी सदस्य उन्हें कैसे देखते हैं? जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिये उन्हें अन्य कमेटी सदस्यों का सहयोग मिल रहा है या नहीं? सरकार को चलाने में उन्हें कैसी दिक्कतें पेश आ रही हैं? उनके नेतृत्व में विकास के कौन-कौन से कार्य हुये हैं? फिलहाल उनकी सरकार के सामने किस प्रकार की चुनौतियां हैं? इन सारे सवालों का सुकड़ी ने विस्तार से उत्तर दिया, जो कि मुझे संतोषजनक लगा। मुझे यह भी लगा कि महिला होने के नाते वह कोई भेदभाव का शिकर नहीं हो रही है।

दूर-दराज के गांव में पैदा होकर शिक्षा के शब्द से भी दूर रखे जाने के बावजूद यह सुकड़ी एक दक्ष शासक कैसी बन सकी? कैसे-कैसे लोगों को यह क्रांतिकारी आंदोलन कैसे उभार रहा है? क्या सिर्फ सुकड़ी ही है इसमें? इस मिट्टी में पैदा हुई न जाने कितनी महिलाओं को इस क्रांतिकारी आंदोलन ने जन मुक्ति गुरिल्ला सेना की सैनिकों, चिकित्सकों, शिक्षकों, तकनीशियनों, शासकों और इन सभी को चलाने वाली पार्टी नेतृत्व के रूप में विकसित किया होगा? जिन लोगों को शासक वर्गों ने अभी तक तिनके से भी कम, हिकारत की नजर से देखा उन्होंने लोगों को आज यह आंदोलन चेतना की ज्योतों में तब्दील कर रहा है।

जहां एक तरफ क्रांतिकारी आंदोलन इन महिलाओं को इस प्रकार उभार रहा है, वहीं दूसरी तरफ शासक वर्ग इन महिलाओं को कुछ दूसरे ही ढंग से बदलना चाह रहे हैं। नीलममडुगू गांव की दो महिलाओं ऊरे और जोगी से मिलने से हमें यह पता चल जाता है कि शासक वर्ग इन महिलाओं को क्या बनाना चाहते हैं।

ऊरे और जोगी दोनों की उम्र 20 साल के आस-पास है। दोनों ही शादीशूदा हैं। ये दोनों भी और उनके पति भी जुड़ूम के शुरू होने तक जन संगठनों की गतिविधियों में सक्रिय थे। इस गांव पर हमला कर जुड़ूमियों ने एक पंचायत के दायरे में जिन 19 पुरुषों का अपहरण किया, उनमें ऊरे और जोगी के पति भी शामिल थे।

जोगी ने मुझे यूँ बताया, “पता चला था कि अपहृत लोगों को विंजरम में रखा गया था। हम बेचैन हो उठी थीं। अपने पतियों की हालत को लेकर चिंता हुई और हमने उन्हें देखना चाहा। बदन पर ढंग से पहनने के कपड़े भी उनके पास नहीं थे। हमें लगा था कि वे कपड़ों के अभाव में बुरी तरह परेशान हो रहे होंगे, इसलिये हम दोनों सोच-विचार करके हाट बजार गई थीं। उनके लिये एक-एक लुंगी खरीदी और मंजन भी खरीदा। ये सामान लेकर हम शिविर पहुंच गई थीं। हम दोनों को देखते ही हमारे पतियों ने कहा कि हम खुद ही जैसे-तैसे यहां से भाग निकल आने की सोच रहे हैं और तुम लोग इसमें क्यों आई हो? जल्दी यहां से चली जाओ। लेकिन वहां मौजूद जुड़ूम नेताओं ने हमें बताया कि तुम लोग अपने पतियों को छोड़कर क्यों वापस जाती हो? उनके साथ तुम लोग भी यहीं रुक जाओ। कुछ दिन बाद

आपका गांव पूरा खाली हो ही जायेगा। सभी को यहीं तो आना है एक दिन। इससे हम भी वहीं रुक गईं।”

उसके बाद वहां रहते हुये ये दोनों युवतियां जुड़ूम नेताओं के बहकावे में आ गईं। वे दोनों रोज पुलिस वालों के लिये खाना बनाती रहीं। उन्हीं के कमरों में रहने लगीं। इनकी ‘सेवाओं’ से खुश होकर उन्होंने साड़ियां खरीदकर दीं। ये दोनों खुश हो गईं। इनके आत्मसमर्पण को देखकर कुछ दिन बाद इन्हें एसपीओ बनाया गया। एसपीओ बनकर इन्होंने दूसरों पर हुक्म चलाना शुरू किया। शिविर में बंद महिलाओं को नहाने, शौच करने ले जाया करती थीं। और जल्दी निपटने का जोर डालते हुये उन्हें गाली-गलोच, मारपीट तक करने लगी थीं। एक प्रकार से कुछ ही दिनों के लिये सही, इनकी आंखें सिर पर चढ़ गई थीं। लेकिन दो-तीन सप्ताह बाद इस गांव के सभी लोगों ने शिविर से भाग निकलने की योजना बनाई। ऊरे को भी उनके पति ने साथ में आने को कहा। वह क्या सोची होगी पता नहीं लेकिन पति के साथ भाग कर आ गई। जोगी नहीं आई। बाद में उसकी मां ने शिविर में जाकर बेटी से खूब खरी-खोटी सुनाई। (उसका एक और बेटा गुरिल्ला दल में काम कर है)। जोगी को समझाया कि वह उस जिंदगी को छोड़ कर वापस आये। पता नहीं उसने क्या सोचा होगा... जिस जिंदगी से खुद उसकी मां तक को घिन आ रही है ऐसी जिंदगी किस काम की समझी या उसे खुद ही अपनी जिंदगी पर घिन आई। जैसे भी हो, पर जोगी भी भाग कर वापस आ गई।

लेकिन गांव की जनता ने इन दोनों को अपने साथ मिलाने से मना कर दिया। जन अदालत में यह मांग उठी कि इन दोनों को मार डाला जाये। लेकिन पार्टी ने जनता को समझाइश दी कि चूंकि उन्हें अपनी गलतियों पर पछतावा है इसलिये उन्हें माफ किया जाये।

हमने दोनों से बात की। अपनी सारी गलतियों को उन्होंने कबूला। क्यों ऐसा किया, यह पूछने पर बताया कि जुड़ूम नेताओं से डरकर उन्होंने जैसे कहा वैसा किया। “उनके कहने से भी क्या आप अपनी बहनों, माताओं जैसी महिलाओं पर ऐसी हिंसा कर सकती हैं?” हमारे इस प्रश्न पर सिर झुकाने के सिवाय वे कुछ नहीं बोल सकीं।

जोगी ने बताया कि हमें सोयम मूका गुरुजी ने सिखाया कि अखबार वालों के साथ कैसे बात करनी चाहिये। जोगी ने यह भी बताया कि इस गुरुजी का हुक्म है कि रात होने के बाद सारी महिलायें कपड़े उतारकर उनके कमरों में सोयें।

शिविर से भाग आने वाले सभी लोगों का इन पर आरोप है कि इन दोनों के साथ पुलिस वालों के यौन संबंध थे। जोगी का पति भी इस बात पर जोर देकर कह रहा था। लेकिन ये दोनों इससे इनकार कर रही थीं। उन्होंने बताया कि “हम उनके लिये खाना बनाती थीं, इसलिये हमें साड़ियां दीं।” लेकिन गांव के सभी लोगों के साथ-साथ इन महिलाओं ने भी एक बात एकमत से बताई कि कामराजू गांव की महिलाओं ने तो पुलिस वालों के साथ ‘स्वेच्छा’ से यौन संबंध कायम कर रखे हैं।

दरअसल यहां पर ‘स्वेच्छा से’ शब्द का दूसरा ही अर्थ समझा जाना चाहिये। भय वश या भ्रम वश शासक वर्गों द्वारा बताये रास्ते पर अगर जनता चलती भी है तो उसे ‘स्वेच्छा से’ नहीं कहा जा सकता। लेकिन चाहे कितने भी भयों और भ्रमों के दबाव के बावजूद अपने घुटने नहीं टेक कर शासक वर्गों के बताये रास्ते का धिक्कार करने वाली जनता के बीच ऊरे और जोगी जैसों के आत्मसमर्पण ‘स्वेच्छापूर्वक’ ही दिखाई देते हैं।

इसलिये इन महिलाओं से जनता बेहद नफरत कर रही है। जोगी के पति ने बेहद भारी मन से अपनी पत्नी के बारे में हमें बताया, “उसने पुलिस वालों के साथ होली खेली थी। इतना ही नहीं, जब मैंने उससे शिविर से भाग जाने की बात की तो उसने मुझसे कहा था कि जाना है तो तुम चले जाओ और तुम जाने से भी मुझे एक से एक मर्द मिलेंगे यहां।”

‘सुकड़ियों’ के खिलाफ कैसी-कैसी महिलायें तैयार करना चाह रही है यह सरकार? हां, वह जिस संस्कृति को बढ़ावा दे रही है और जिस ‘विकास’ (पर्यटन उद्योग वगैरह) का वह ढिंढ़ोरा पीट रही है, उसके लिये ऐसी ही महिलाओं की जरूरत तो है उसे।

सांस्कृतिक विध्वंस

हम जब अपना दौरा समाप्त कर वापस आ रहे थे तब एक रात हमने जिस गांव में गुजारी थी, वहां कुछ और

कॉमरेडों से भेंट हुई थी। चूँकि हमने ऐसे इलाके में एक सप्ताह बिताया था जहाँ पर नाच-गाना पूरा बंद हो चुका था, इसलिये हमारा भी मन हुआ था कि कुछ नाच-गाना हो जाये। हमने उस गांव की सीएनएम टीम से सांस्कृतिक कार्यक्रम की फरमाइश करनी चाही। लेकिन वह जोताई का समय था, इसलिये हमें यह भी लगा था कि शायद वे थके हुये होंगे। फिर भी उनका नाच-गाना देखने की इच्छा बलवती हुई तो हमने उनसे पूछा कि वे कम से कम 4-5 गीत तो सुनायें। उन्होंने हाँ कह दिया। चांदनी रात थी। हमने देखा कि गांव के सारे बच्चे कुछ न कुछ खेलने में मशगूल थे। मैंने उनसे पूछा कि क्या वे रोज इसी तरह खेलते रहते हैं, तो उन्होंने बताया कि चांदनी रात हो तो हर रोज खेलते हैं। कुछ देर बाद हरे और लाल पोशाक पहन कर सांस्कृतिक दल उत्साह के साथ आ गया। उन्होंने नाचना-गाना शुरू किया। हमने जो पहले सुन रखे थे और जो हमें पसंद थे, उन सभी गानों की फरमाइश कर उनसे गवाये। हमने तय किया था कि हम तब तक कार्यक्रम को देखेंगे जब तक कि वे समाप्त नहीं करते। हमने पहले सोच रखा था कि बेचारे थके-मांदे होंगे, लेकिन बाद में लगा कि वे एक-एक गाने के साथ नए जोश को हासिल करते जा रहे हैं। हमें समझ में आ गया कि उनमें से कोई भी उस कार्यक्रम को समाप्त करने के मूड में नहीं है। लेकिन हमें ही भूख लगनी शुरू हो गयी। आखिरकार हमें ही यह कहना पड़ा कि 'अब बस, खाना खा लेंगे'। खाना खाने के बाद उन्होंने फिर से शुरू किया। हमारे साथ मौजूद सभी स्थानीय कॉमरेड उस नाच-गाने में उतर गये थे। मैं और मैदानी इलाके से आई एक और कॉमरेड दोनों एक घर में सोने चली गई। (दरअसल सांस्कृतिक कार्यक्रम देने की फरमाइश में हम दोनों का ही जोर ज्यादा था)। भोर के समय जब मेरी नींद खुली थी तब भी गीतों की धुनें सुनाई दे रही थीं। हमारी टीम का कोई भी कॉमरेड सोने नहीं आया था। जब मैंने बाहर आकर देखा तो दूधिया चांदनी, मानों नाच-गानों को विस्मय के साथ निहार रही हो!

मुझे तब एकायक 'राहत शिविरों' की याद आई जिनके बारे में जुड़ूम पीड़ितों ने बताया था। क्या नाच-गानों के साथ प्रकृति की गोद में खेलने वाली इन्हीं आजाद पंछियों को उन काल कोठरियों में कैद कर रहे थे? मेरे जेहन में यह सावाल आया।

एक महिला ने शिविर की जिंदगी के बारे में बताते हुये कहा था, "हमें गाना गाओ बोलते थे। नाचने के लिये बोलते थे। हमने बताया कि हमें नहीं आता। वे बोलते थे कि नक्सलवादी आते हैं तो उनके सामने नाचते-गाते हों न। हमने बताया कि कुछ लोग ऐसा करते होंगे। हमें तो बचपन से आदत नहीं है। उनके सामने नाचने की इच्छा कैसे हो सकती थी?"

हां, मन करेगा तभी तो न कोई भी नाच सकता है या गा सकता है? उस दूधर जिंदगी से वे नाच भी कैसे सकते थे? गा भी कैसे सकते थे?

शासक वर्ग एक भयानक व भीभत्सपूर्ण दमनचक्र चला रहे हैं ताकि यहां की जनता को यहां से खदेड़ा जा सके। प्रकृति की गोद से, इस उन्मुक्त दुनिया से इन्हें अलग करने से इन नाच-गीतों का क्या होगा? अगर इनके नाच-गीत ही खत्म हो जायेंगे तो इस देश की सांस्कृतिक धरोहर में कितना बड़ा घाटा होगा? कितनी बड़ी क्षति होगी?

नाच-गाने के बगैर आदिवासियों की जिंदगी का मतलब ही क्या रह जाता है? इनकी जिंदगी ही नाच-गानों से गुंथी हुई है। इनमें जन्म से मृत्यु तक, तीज-त्यौहार, खुशी, गम कामकाज... हर मौके पर नाच-गानों के साथ इनकी जिंदगी जुड़ी होती है। ऐसे में इन्हीं नाच-गानों से अगर अलग कर दिये गये तो ये जिंदा लाशों के सिवाय कुछ नहीं होंगे।

राहत शिविरों में जिंदगी के प्रति इन्हें कितनी घिन है, यह मुझे मोल्ललबंडा गांव के लोगों की बातों से और ज्यादा समझ में आई, जो शिविर से भाग कर आये थे।

एक किसान ने दुत्कारते हुए कहा, "वह भी कोई जिंदगी है!? वहीं खाना, वहीं हगना, चारों तरफ गंदगी ही गंदगी फैली हुई थी। मक्खियों की भरमार थी। बीमारियों की कमी ही नहीं थी।"

जबसे मैंने आदिवासी गांवों को देखना शुरू किया तभी से मेरे मन में एक शंका पैदा हुई थी। कई बार मैं सोचती रहती थी कि ये लोग शौच कहां करते होंगे। 'सभ्य' समाज के किसी भी गांव में जिस किसी भी दिशा से प्रवेश करना हो तो सबसे पहले मल विर्सजन वाले क्षेत्र से गुजरना पड़ता है। गांव क्यों? मेट्रोपालिटन शहरों में भी, शहरों के बीचों-बीच भी ऐसे कई क्षेत्र आते हैं, जहां से नाक बंद करके तेजी से गुजरने पर मजबूर होना पड़ता है। लेकिन इस 'असभ्य' समाज में न तो गांवों में प्रवेश करते हुये, न ही गांवों के बीचों-बीच ऐसा क्षेत्र देखा जहां पर गंदगी का निशान हो। ऐसे माहौल में पलने-बढ़ने वालों को सैकड़ों लोगों द्वारा पास-पास शौच करने का माहौल कितना असहनीय और

घिनौना लगा होगा?

कुछ महिलाओं ने उन दूधर दिनों को याद करते हुये बताया, “पुरुष ही (एसपीओ) हमें नहाने और शौच करने ले जाते थे। हम जब शौच करने बैठती थीं और नहाती थीं, वे सामने ही खड़े रहते थे। ऐसे में हमें कितनी घिन आती थी, हम बता नहीं सकतीं।” जब मैंने एक और कॉमरेड से ये बात बताई तो वह बोली, “आदिवासी महिला किसी दूसरी महिला की नजरों के सामने भी शौच नहीं करती। ऐसे में अगर पुरुषों के सामने ही उन्हें जाना पड़ा तो वे शर्म के मारे मर गई होंगी।”

मैंने यहां पर कई बार गौर किया कि यहां की महिलायें आराम से नहाती हैं। उन्हें देखकर मुझे लगता था कि शहरों के बदबूदार बाथरूमों की स्थिति तो नहीं है इनकी, जहां पर नाक बंद करके दो मिनटों में सब निपटना पड़ता है। अब जो बाथरूम बनाये गये और बनाये जा रहे हैं, वे भी मुझे काफी साफ-सुथरे और बड़े दिखाई दिये। शिविरों से वापस आई महिलाओं ने बताया, “सभी को एक साथ झुण्ड में नहाने ले जाते थे। ‘जल्दी निपटाओ’ कह कर गालियां बकते थे। ऐसे में हम कहां ढंग से नहा सकती थीं? पानी में डुबकी लगाकर रस्मी तौर पर नहाया करती थीं।”

“हम एक दिन मछली पकड़कर लाते हैं। एक दिन कोई कंद खोद लाते हैं। किसी दिन कोई भाजी लाकर पका लेते हैं। और किसी दिन कोई फल लाकर सब्जी बना लेते हैं। ऐसे में एक दिन आलू... फिर आलू, और फिर आलू कभी दाल, और रोज दाल ही दाल, बस इतना ही। हम कहां खा सकते थे? खाने के नाम पर ही हमें चिढ़ लगने लगती थी,” ऐसा कहकर एक किसान हंस पड़ा। उसने जिस ढंग से बताया उस पर सभी हंस पड़े।

नीलममडुगू गांव के एक व्यक्ति का यह कहना था, “हम दिन भर कोई न कोई काम करते रहते हैं। शिकार करने जाते हैं या और कोई काम करते हैं। लेकिन वहां दिन भर चुप-चाप खाली बैठने से हमें कैसा लगेगा? कब-कैसे यहां से भागा जाये यही सोचते रहते थे।”

“पहले तो कुछ दिनों तक हमें धूप में रहना पड़ा था। बाद में तंबू लगा दिये गए थे। सभी झुंड के झुंड ही तंबू में ठुंसाये जाते थे। पति-पत्नी रहते थे तो उनके लिये अलग से तंबू लगाते थे। वे ऐसे होते थे कि एक बड़े तंबू के भीतर पालिथीन की शीटों से अलग-अलग चार भाग बनाये जाते थे। किसी एक भाग में भी कोई धीरे से ही बात करे तो बाकी तीनों भागों में सुना जा सकता था” शिविर के अनुभव बताते हुये उन लोगों ने कहा।

आमतौर पर मैंने इस इलाके में यह देखा कि घर छोटे हों या बड़े, घर के परिसर में खाली जगह जरूर होती है। पास-पास सटे हुये घरों को मैंने यहां देखा नहीं। जिनके घर छोटे हों उनके लिये सोने की अलग-अलग झोपड़ियां भी होती हैं। या फिर घर के सामने बरामदा होता है। मवेशियों के लिये अलग से बाड़े होते हैं। इस तरह जीने वाले लोग शिविरों की तंग और दम घांटू जिंदगी को कैसे बर्दाश्त कर सकेंगे?

लेकिन सरकार ने इसी असहनीय जिंदगी को यहां की जनता पर थोपते हुये अभी तक 50 हजार लोगों को शिविरों में कैद कर रखा है।

एटेगट्टा गांव की एक महिला ने कहा, “रातों में गुंडे पीकर आते थे और हमारे इर्द-गिर्द ही घूमते रहते थे। सो जाने से पता नहीं ये लोग क्या करेंगे, इस डर से हम रात भर बच्चों को सामने रखकर बैठे रहती थीं।”

बाहर के सामाज में महिलाओं को घर में भी और बाहर भी हर पल बलात्कार का शिकार होने का डर सताता रहता है। लेकिन यहां की महिलाओं को इस तरह का डर है ही नहीं। आदिवासी संस्कृति में उसे जगह ही नहीं है।

लेकिन ‘राहत शिविर’ महिलाओं के लिये बलात्कार और यौन असुरक्षा के केंद्र में बने हुए हैं।

जैसे कि मैंने पहले ही नीलममडुगू की जोगी, जो एसपीओ के रूप में काम करके भाग आई थी, के शब्दों में बताया कि “मूका गुरुजी (जुडूम नेता) ने यह फरमान जारी किया था कि रात में सभी महिलायें कपड़े उतारकर उनके कमरों में सोयें,” बस, यह एक वाक्य हमें समझा देता है कि शिविरों में महिलाओं की स्थिति कितनी खराब है।

मुझे बताया गया कि दण्डकारण्य के कुछ इलाकों में महिलाओं में ब्लाउज पहनने की आदत नहीं थी। उस तरह नहीं पहनना एक रिवाज था। लेकिन क्रांतिकारी आंदोलन के जरिये यहां की महिलाओं में इस रिवाज के खिलाफ बगावत करने की चेतना बढ़ गई। अब महिलाओं को ब्लाउज न पहनने का फरमान जारी करने की हिम्मत किसी में नहीं है। इस प्रकार क्रांतिकारी आंदोलन ने कपड़े पहनने की संस्कृति सिखाई। लेकिन जुडूम इस संस्कृति को तबाह करने की

कोशिश कर रहा है।

खेलते-कूदते, काम करते, परिंदों की तरह उड़ने वाले बच्चों के लिये भी ये शिविर बेहद पीड़ादायक बने हुये हैं। ऐटेगट्टा के एक पांच साल के बच्चे से जब मैंने शिविर की हालत के बारे में जानना चाहा तो उसके चेहरे का रंग उबकाई सा बदला और कहा 'थू!'।

इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि जुड़ूम के चलते जनता का सांस्कृतिक जीवन किस हद तक तबाह हुआ होगा।

वेदना, जुदाई और अपनों से बिछुड़ने का गम!

सलवा जुड़ूम के हमले का शिकार हुये किसी भी गांव पर नजर डाली जाये तो हम यह साफ तौर पर देख सकते हैं कि यहां की जनता द्वारा सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में हासिल प्रगति का किस तरह विध्वंस हो रहा है। इसीलिये सलवा जुड़ूम को 'सर्व विध्वंस' की संज्ञा दी जा रही है। पर मैं जब गगनपल्ली के ग्रामीणों से मिली तो मुझे इस बात से भी बड़ा दुख हुआ कि जुड़ूम के कारण पारिवारिक संबंध भी छिन्न-भिन्न हो रहे हैं।

ऐसा कहना अतिरंजित नहीं होगा कि इस गांव में एक भी ऐसा परिवार नहीं बचा है, जो बिखर नहीं गया हो। कुछ लोगों को यह भी नहीं मालूम कि उनके परिवार जनों को 'जुड़ूम' उठा ले गया या फिर वे 'स्वेच्छा से' जुड़ूम में शामिल हो गये। जुड़ूम के हमले से डरकर भागे अपने लोग कहीं न कहीं सुरक्षित हैं भी या जुड़ूम के पंजों का शिकार हो चुके हैं, यह बात उनके परिवार वालों को मालूम नहीं। यह भी बहुत से परिवारों को पता नहीं कि जिन्हें बांधकर ले जाया गया उन्हें शिविर में रखा गया या मार डाला गया। सभी लोगों की स्थिति यह है कि उन्हें यह भी नहीं मालूम कि शिविरों में रह रहे उनके कितने परिवार जन उनके खिलाफ एसपीओ बन गए होंगे।

अब तक हम यह कहते रहे हैं कि सरकार इस हत्याकांड में आदिवासियों के खिलाफ आदिवासियों को खड़ा कर रही है। लेकिन इस गांव के लोगों को देखने के बाद मुझे लगा कि सिर्फ इतना कहना काफी नहीं होगा। क्योंकि मुझे यहां यह समझने का मौका मिला कि वह पतियों के खिलाफ पत्नियों को, मां-बाप के खिलाफ बच्चों को, भाई के खिलाफ भाई को और बहन के खिलाफ बहन को भी खड़ा कर रही है।

इस दौरे के दौरान कोंटा गुरिल्ला दस्ते के सभी सदस्यों से मेरी आत्मीयता बढ़ी। यह उनकी आत्मीयता ही थी जिससे जुड़ूम विध्वंस को देख आहत हो रहे मेरे मन को सांत्वना मिलती रही। आधी-अधूरी और टूटी-फूटी कोया भाषा के साथ मेरी मशक्कत को देखकर वे हंसते थे और मुझे हंसाते थे। उनमें से भीमाल और मुत्ताल नामक दो दल सदस्य मेरे करीबी दोस्त बने थे। भीमाल के साथ मेरा परिचय लंबा है। क्योंकि वही मेरी अपाईंटमेंट में आया था। मुझे उनकी बाकी टीम के पास ले जाने के लिये उसी ने 6-7 घंटों तक मुझे सायकल के पीछे बिठा कर ऊबड़-खाबड़ रास्तों से चलाया था। दस्ते में सबसे छोटा सदस्य था मुत्ताल (16)। पूरे दस्ते में स्कूली पढ़ाई (6वीं कक्षा) प्राप्त वही एक मात्र सदस्य था। वह कम बोलता था और सबसे छोटा भी था। शायद इसीलिये उसे देखकर मुझे अच्छा लगता था। खाली समय में मैं उसी से ज्यादा बतियाते रहती थी। लेकिन दो-तीन दिन बाद मुझे पता चल पाया कि भीमाल और मुत्ताल दोनों सगे भाई हैं। और यह भी कि सलवा जुड़ूम ने उन दोनों की निजी जिंदगियों में भी अशांति फैला दी।

इनके माता-पिता की कुल छह संतानें थीं। दो बेटियां और चार बेटे। बड़े बेटे जोगाल, मुत्ताल और बेटी एंकी को स्कूल में दाखिल किया गया था। जब जुड़ूम की शुरुआत हुई तब जोगाल 10वीं कक्षा में और मुत्ताल 6वीं कक्षा में कोंटा में पढ़ रहे थे। दो साल पहले भीमाल जन मिलिशिया में शामिल हो गया। इस इलाके में सलवा जुड़ूम के विस्तार होने से पहले ही जुड़ूम के बारे में, उसे हराने के लिये लोगों के संगठित होने की जरूरत के बारे में पार्टी द्वारा चलाये गये प्रचार कार्यक्रमों में उसने सक्रिय भाग लिया। इतने में उनके परिवार को जुड़ूम ने डस लिया। कोंटा में अपने शिक्षक के घर किसी काम पर गए हुए जोगाल का गुंडों ने अपहरण किया। जोगाल पार्टी से हमदर्दी रखता था। इसका पता चलते ही मुत्ताल सतर्क हो गया और तुरन्त ही गांव लौट आया। बाद में दस्ते में भर्ती हुआ। पता चला कि जोगाल को कुछ दिनों तक एर्बोर शिविर में रखा गया था। बाद में कोंटा शिविर में ले जाया गया। उसके बाद से वह लापता है। इनके गांव को जलाने के बाद इनके मां-बाप इन दोनों भाइयों के मना करने के बावजूद भी न सुनते हुये बाकी बच्चों को लेकर आंध्रप्रदेश चले गये। फिलहाल खबर यह है कि वे जुड़ूम में शामिल हो गये हैं। यह पता नहीं चल सका कि वे 'स्वेच्छा से' जुड़ूम में शामिल हुये या जुड़ूम वालों ने उनका अपहरण किया।

ऐसी कहानियां इस गांव के किसी भी परिवार से पूछने पर सुनने को मिलती हैं।

करनम रामाल जन मिलिशिया में काम कर रहा है। उसकी पत्नी गंगी गोद में नन्हे बच्चे को लेकर पड़ोसी राज्य उड़ीसा स्थित रिश्तेदारों के घर चली गई थी। जुड़ूम वालों ने उसे वहीं से पकड़ लिया और कोंटा स्थित 'रहात शिविर' में रखा। बाद में रामाल के मां-बाप, बहनें, भाई सभी जुड़ूम में शामिल हो गये।

सोयम आदे 10 साल के अपने इकलौते बेटे को आंध्रप्रदेश स्थित अपनी ननद के घर छोड़ आई थी ताकि उसे इस झंझट से दूर रखा जा सके। लेकिन जुड़ूम वाले वहां से उसके बेटे के साथ-साथ ननद को भी पकड़कर ले गये। बाद में सोयम आदे के पति को भी जुड़ूम वालों ने पकड़ लिया। अब आदे को इसकी कोई जानकारी नहीं है कि उसके पति और बेटे जिंदा हैं भी या नहीं।

पोडियम दूले के मां-बाप और दो छोटे भाई हैं (शायद थे)। मां गंगी, एक छोटा भाई नरेश और उसकी पत्नी का जुड़ूम वालों ने अपहरण किया। एक और छोटा भाई गुरिल्ला दस्ते में सदस्य है। फिलहाल वह और उसके पिता दोनों ही यहां रह रहे हैं।

सलवा मुत्ती के दो बेटे और एक बेटी हैं। उसका पति और एक बेटा जुड़ूम में शामिल हो गये।

पिता विहीन कोवासी मूकाल अपनी मां, चार छोटे भाइयों और एक छोटी बहन के साथ रह रहा था। पता चला कि उड़ीसा राज्य गये हुये उसके दो भाई फिलहाल जुड़ूम में शामिल हो गये हैं। यह मालूम नहीं हो पाया है कि उन्हें जबरन ले जाया गया या वे खुद ही शामिल हो गये। एक और भाई का जुड़ूम ने तब अपहरण किया जब उसने गांव पर हमला किया। तीन भाइयों के दूर हो जाने के बाद मूकाल अपने चौथे भाई को बचाने के लिये घर ले आया था जो दोरनापाल में 9वीं कक्षा में पढ़ रहा था। लेकिन वह भाई अपनी मां को भी साथ लेकर जुड़ूम में शामिल हो गया। फिलहाल मूकाल और उसकी छोटी बहन दोनों ही बचे हुये हैं।

मड़काम तिरुपो के पिता को सलवा जुड़ूम के गुंडे पकड़कर ले गये। उसके बाद डर के मारे उसकी मां और बड़े भाई आंध्रप्रदेश चले गये। फिलहाल तिरुपो और उसका छोटा भाई दोनों ही यहां हैं। मां और बड़े भाई ने उन्हें भी बुलाया, लेकिन ये दोनों जाना नहीं चाहते हैं।

कूरा राजाल के छोटे भाई और छोटी बहन का जुड़ूम ने अपहरण किया। बाद में उसका पिता जाकर जुड़ूम में शामिल हुआ। फिलहाल वह और उसकी मां दोनों ही रह गये। कोवासी लच्छी के बेटे आयताल को पुलिस ने तब पकड़ लिया जब वह मजदूरी काम पर जाकर वापस घर आ रहा था। बाद में वह घर आकर अपनी पत्नी, बहनों और दादी को लेकर चला गया। यूं उसके साथ जाने से इनकार करने वाली लच्छी और उसके पति दोनों ही बचे हुए हैं।

सामला कन्ना की पत्नी डर के मारे अपने मायके गई हुई थी। वहीं से वह जुड़ूम में शामिल हो गई। उसने कन्ना को खबर भेजी, लेकिन कन्ना नहीं गया।

इस तरह इस गांव के किसी भी शख्स से बात छेड़ने से अपनों से दूर होने का गम की लहर हमें छू लेती है। इस गांव की पूरी आबादी 1,000 है जिसमें 600 लोग जुड़ूम में शामिल हैं। न जाने कितने दुख भरी कहानियां और हैं इन लोगों के दिलों में।

ऐसी कहानियां मनिकोंटा गांव में भी कम नहीं हैं।

वेट्टी कामाल के पिता देवाल को हाट बाजार से उठा ले जाकर शिविर में रखा गया। उसके बाद वह वापस आया और अपनी पत्नी और दो नातियों (कामाल की बेटियों) को साथ लेकर कामाल को बताये बिना ही शिविर ले गया। ऐराबोर शिविर में कुछ दिनों तक रहने के बाद जुड़ूम के गुंडों ने इन चारों को मार डाला। जन्म देने वाले माता-पिता और अपने मसूम बच्चों को खोने वाले कामाल की मानसिक वेदना का अंदाजा लगाना भी किसी के बस की बात नहीं है।

कट्टाम जोगी की पांच बेटियां और तीन बेटे हैं। जब वे सब मजदूरी के काम में आंध्रप्रदेश जाकर लौट रहे थे, रास्ते से उसकी चार जवान बेटियां और एक बेटे का जुड़ूमियों ने अपहरण किया। पांच बच्चों से दूर हुई जोगी के मन में झांकने की हिम्मत किसकी होगी?

माड़िवी जोगाल का छोटा भाई उड़ीसा भाग गया था। उसे वहीं से पकड़ लिया गया। एक सप्ताह तक शिविर में

रखने के बाद उसकी हत्या कर दी गयी।

सोड़ी सिंगाल की बेटी गंगी (15) का अपहरण कर एराबोर शिविर में रखा गया।

कट्टा गंगी के पति और बेटी दोनों का जुड़ूम ने अपहरण किया। अभी तक उनका कोई अता पता नहीं है।

इसी गांव के 35 लोगों को जुड़ूम वालों ने तब उठा लिया जब वे आंध्र में मजदूरी काम करके वापस आ रहे थे। इनमें 20 लड़कियां शामिल हैं। ये सब कहां हैं? कैसे हैं? किसी को नहीं पता!

ऐसी घटनायें हर गांव में घटी हैं, भले ही उनकी तीव्रता में कमोबेशी क्यों न हो।

एटेगट्टा गांव का भीमाल 'स्वेच्छा से' सलवा जुड़ूम में शामिल हुआ। अपनी पत्नी और तीन बच्चों को भी साथ ले गया। लेकिन उनकी एक 10 वर्षीया बेटी अपनी दादी के पास रह गई। यहां खास बात यह है कि उसके पहले भीमाल की मां और भाई को जबरन ले जाकर शिविर में रखा गया तो वे कई कोशिशों के बाद भाग आये थे। जिस जिंदगी को मां और भाई ने पहले ही ठुकरा दिया था उसी को भीमाल ने "स्वेच्छा से" चुना।

गोरखा गांव के निवासी मड़काम आयताल की दो साल पहले शादी हुई थी। उनकी पत्नी कोवासी अड़मे अपने रिश्तेदारों के पास जाकर जब वापस आ रही थी तब एराबोर शिविर के नजदीक जुड़ूम लोगों ने पकड़कर शिविर में रखा। अब शिविर के एक एसपीओ से उसने शादी कर ली।

इप्पागूडेम गांव की कोवासी कन्नी के बारे में भी यहां बताना लाजिमी है। वह केएमएस की ग्राम कमेटी की सदस्या थी। इनके गांव में 9 परिवारों को छोड़कर बाकी सभी सलवा जुड़ूम में शामिल हुये। कन्नी के दो बड़े भाई हैं, जिनकी शादियां हुईं, बाल-बच्चे हुये और सब अलग-अलग हो गये। कन्नी 20 साल की है और अविवाहिता है। उसके माता-पिता और एक भाई का परिवार जुड़ूम में शामिल हुये। एक और भाई ने जुड़ूम में शामिल होने से इंकार कर दिया और वह आंध्र चला गया। कन्नी अपनी मौसी के साथ रह रही है जो नीलममडुगू गांव की है। जितना अनाज उठा सकती थी उतना उठाकर और हाथ में जो पैसे थे उन्हें लेकर उसने गांव छोड़ दिया। बाद में उनके गांव को जुड़ूम ने जला दिया। जुड़ूम में शामिल कन्नी का भाई दर्भागुडेम विस्फोट में (दर्भागुडेम के पास नक्सलवादियों ने जुड़ूम के सदस्यों को निशाना बनाकर एक ट्रैक्टर को बारूदी सुरंग से उड़ा दिया जिसमें 26 लोग मारे गये थे) मारा गया। मां-बाप, भाभी और उसके बच्चे अभी भी शिविर में रह रहे हैं। कन्नी से जब मैंने यह पूछा कि क्या वह आंध्र गये अपने भाई के पास या शिविर में रह रहे मां-बाप के पास जाना नहीं चाहती है, तो उसने बताया कि जिस मिट्टी में वह पैदा हुई उसे छोड़ जाने का सवाल ही पैदा नहीं होता।

एसपीओ के रूप में काम कर वापस आई जोगी के बारे में यहां पर कुछ और बताऊंगी। हमने उसके पति से बात की। जब वह शिविर से लौटी थी तब वह गर्भवती थी, पति का कहना है कि उससे उसका संबंध नहीं है। इतना ही नहीं, वह अपनी पत्नी के रूप में उसे स्वीकारने को तैयार ही नहीं है। हमने उसे समझाया कि चूंकि वह पछता रही है इसलिये वे दोबारा मिलजुल कर जिंदगी शुरू करें। पुलिस वालों के साथ कोई संबंध नहीं रखने की उसकी दलील को ठुकराते हुये उसने सवाल उठाया "अगर कोई संबंध नहीं था तो पुलिस वालों ने उसे साड़ियां क्यों दीं? और उनके साथ मेरी पत्नी ने होली कैसे खेली?" इतना ही नहीं, उसने अपने मन की घायल परतें हमारे सामने खोलते हुये कहा कि वह रोज रात में उसके बगल से उठकर जाती थी और काफी देर बाद लौट आती थी। कहां गई थी यह पूछने पर चिढ़कर बोलती थी, क्या पेशाब करने भी नहीं जा सकती। और उसके साथ हमेशा अनमने ढंग से रहती थी। उसने यह भी बताया कि जब उसने शिविर से भाग जाने का प्रस्ताव रखा तो वह नहीं मानी। इस हद तक टूटे इन दोनों के रिश्ते का फिर से जुड़ना कितना मुश्किल है? इस जोगी का एक भाई गुरिल्ला दस्ते में काम कर रहा है। जुड़ूम ने जोगी को एसपीओ बनाकर उसके सगे भाई के खिलाफ भी खड़ा किया था।

जुड़ूम एक तरफ पारिवारिक रिश्तों को छिन्न-भिन्न करते हुये ही, दूसरी तरफ उन्हीं रिश्तों को अपनी सर्व विध्वंस की योजनाओं के लिये इस्तेमाल कर रहा है। वह इस तरह कि जब वो गांवों पर हमले करता है तो आमतौर पर पुरुषों को ले जाकर शिविरों में कैद करता है। ऐसे में उनकी पत्नियां इस डर से कि वे शिविरों में नहीं जायेंगी तो जाने वो लोग अपने पतियों का क्या हाल करेंगे, यह सोचकर कि भला-बुरा जो भी हो एक साथ ही रहना बेहतर हो सकता है, बोरिया-बिस्तर बांधकर शिविरों की तरफ रुख कर रही हैं। जिन लोगों की जवान बेटियों को जुड़ूम वाले उठाकर ले गये हों, वो लोग अपने जिगर के टुकड़ों को बचाने के लिये पूरे परिवार को लेकर शिविरों में जा रहे हैं। (इस तरह

लोगों के जाने को ही सरकार प्रचारित कर रही है कि लोग स्वेच्छा से जुड़ूम में शामिल हो रहे हैं और नक्सलवादियों के आतंक के कारण लोग शिविरों में रहने पर मजबूर हैं।) माताओं के पुत्र शोक का भी जुड़ूम कैसे नाजायज फायदा उठा रहा है, यह हमें ऐटेगट्टा गांव की महिलाओं से मिलने के बाद समझ में आया।

इस गांव पर हमला कर घरों को जलाकर जुड़ूम ने वहां मिले 74 लोगों का अपहरण किया। उसमें सिर्फ तीन पुरुष बाकी सब महिलायें और बच्चे थे। इन सभी को शिविर में रखकर बुरी तरह मारा-पीटा गया। बाद में वो लोग हर दिन कुछ महिलाओं को शिविर से गांव भेजा करते थे ताकि वे बाकी ग्रामवासियों को मनवाकर शिविरों में ला सकें। लेकिन महिलाओं के साथ उनके बच्चों को नहीं भेजते थे। बच्चों को कैप में ही रखते थे।

“वो महिलायें आकर हमें शिविरों में जाने के लिये मनाने की कोशिशें करती थीं। शिविरों में ज़िंदगी अच्छी है, अच्छा खाना दे रहे हैं, आगे-आगे हम सभी को शिविरों में ही रहना होगा। सभी के लिये मकान बनाकर दिया जायेगा, आदि-आदि बातें करती थीं। फिर भी हमने उनकी बातें नहीं सुनीं। एक भी जुड़ूम में शामिल नहीं हुआ” एक महिला ने थोड़ा गर्व से कहा।

शिविर में दमन झेल कर लौटी एक महिला ने यूँ कहा, “हम करें तो क्या करें? हम यूँ ही बताते थे। हम वापस शिविरों में नहीं जाने की सोचते थे पर हमें बच्चों की याद आती थी, जो शिविरों में उनके कब्जे में हैं। इसलिये हम वही सब बताते थे जो हमें बताने के लिये बोला जाता था। हम डरते थे कि हम अगर किसी को नहीं ले जायेंगे तो न जाने वो हमारे साथ क्या-क्या करेंगे? यह डर हमें सताता रहता था। इसके अलावा हम सभी महिलायें ही महिलायें थीं, इसलिये शिविर में हमेशा डर लगता था। गुंडे लोग पीकर आते थे। और रातों को हमारे इर्द-गिर्द ही चक्कर लगाते थे। इस डर से कि हम अगर सो जायेंगे तो पता नहीं क्या करेंगे, बच्चों को सामने रखकर रात भर बैठे रहती थीं। इसलिये हमने विचार किया कि हमारे पुरुष भी शिविर में आयेंगे तो हमें थोड़ी हिम्मत मिल सकती है।”

अपने पतियों व गांव के अन्य लोगों के द्वारा शिविर में जाने से इंकार करने के बावजूद भी ये महिलायें शाम तक शिविर में लौट जाती थीं। कुछ महिलाओं को गांव भेजा जाता था। किसी को भी मनवाकर नहीं लाने की बात करते हुये इन्हें जुड़ूम वाले गंदी-गालियां देते थे। “तुम लागों के मर्द नक्सली बने हैं” कहते हुये लातें मारते थे। इस तरह एक माह तक नारकीय ज़िंदगी गुजारने के बाद ये सारी महिलायें अपने बच्चों के साथ शिविरों से भाग आईं।

इस तरह बताते चलूं तो कई ऐसी घटनायें हैं। जनता की ये वेदनायें, जुदाई, पुत्र शोक, अपनों से बिछुड़ने का गम आदि क्या यूँ ही इतिहास में दब जायेंगे? क्या विस्फोट बन इतिहास को एक नया मोड़ दिये बिना ही रह जाएंगे?

छिन्न-भिन्न होता सामूहिक जीवन

पारिवारिक रिश्ते ही नहीं, सामाजिक संबंधों को भी जो नुकसान हुआ वह कम घातक नहीं है। सामूहिकता आदिवासी समाज की जीवन रेखा है। आदिवासी समाज को संचालित करने वाला गतीय नियम है। उत्पादन, बंटवारा, दुख-सुख, खुशी, गम... ये सभी सामूहिक ही होते हैं।

लेकिन अब एक ही गांव में कुछ लोग जुड़ूम में (जबरन या ‘स्वेच्छा से’) शामिल हुये, तो कुछ और लोग आंध व उड़ीसा चले गये। कुछ अन्य लोग इस इलाके के दूसरे गांवों में स्थित अपने रिश्तेदारों के पास जा रहे हैं। बाकी बचे लोग भी अब इस स्थिति में नहीं हैं कि वे एक जगह रह सकें। क्योंकि अब अनुकूल जगह (अनुकूल का मतलब यहां पर ऐसी जगह है जहां झोपड़ी बनाने से भी दूर से न दिखे और गोपनीय रहे) मिलने पर 2-3 घर बनाये जा रहे हैं। इस तरह जब गांव, परिवार तितर-बितर होंगे तो सामूहिक जीवन का अस्तित्व ही कहाँ रहेगा?

जुड़ूम इस जनता को कई सामाजिक संबंधों से बलपूर्वक अलग-थलग कर रहा है। इन्हें अपने अड़ोस-पड़ोसियों, रिश्तेदारों, शुभचिंतकों, दोस्तों और आत्मतीयजनों को छोड़कर कहीं दूर जाना पड़ रहा है। इस प्रकार उन्हें कई रिश्तों, ममताओं, आत्मीयताओं, भावनाओं और मुहब्बतों से हमेशा के लिये दूर होना पड़ रहा है। इनके रिश्ते और मुहब्बतें सिर्फ इंसानों से तो नहीं हैं! उस गांव से जहां वे पैदा हुये, उस घर से जिसे उन्होंने अपनी मेहनत से बनाया, उस मिट्टी से जिसे उन्होंने अपने पसीने से सींचा है, उन पेड़-पौधों से जिनके इर्द-गिर्द उन्होंने ज़िंदगी गुजारी, उन नदी-नालों से जिनमें उन्होंने कूद-कूद और डुबकी लगा-लगा कर बचपन बिताया... इन सभी से उनके रिश्ते-नाते, प्यार-मुहब्बत को खत्म

कर लोगों को जबरन अलग-थलग किया जा रहा है।

जब मैंने कॉमरेड मंगी और मुत्ती के परिवार के बारे में सुना तो यह बात मैं और ज्यादा गहराई से समझ पाई। ये दोनों ही महिलायें जन मिलिशिया में काम कर रही हैं और दोनों करीबी रिश्तेदार भी हैं। मुत्ती की सगी बुआ है मंगी। ये दोनों हमारे दौरे में हमारी सुरक्षा की जिम्मेवारी में थीं। शिविर से भाग कर आए लोगों से बातचीत के दौरान कई बार कामराजू नामक गांव के लोगों का जिक्र आया था। इनके बारे में बताया जाता रहा कि वो लोग सलवा जुद्ध में सक्रिय रूप से भाग ले रहे हैं। और एसपीओ बनकर शिविरों में लोगों को यातनायें दे रहे हैं। इस तरह मुझे कामराजू ज्यादा परिचित हुआ और तभी यह पता चला कि मंगी और मुत्ती भी इसी गांव की हैं। हम जब नीलममडुगू के ग्रामीणों से मिलने गये थे तब मुत्ती के पिता (मंगी के भाई) मिले थे। इन तीनों से मैंने बात की।

इनके गांव में जनवरी 2006 की शुरुआत में जुद्ध की बैठक हुई थी। पनगुण्डा के ग्रामीणों ने यहां बैठक ली थी। उन्होंने अनाप-शनाप प्रचार किया कि सभी गांव में जुद्ध में शामिल होने लगे हैं, आपको भी इसमें शामिल होना चाहिये, क्रांतिकारी आंदोलन जल्द ही खत्म हो जायेगा, आदि-आदि। वे यह भी बताकर चले गये थे कि एक हफ्ते बाद कोंटा में आयोजित होने वाली सलवा जुद्ध सभा में सभी आयें, जहां मंत्री भी आने वाला है। कोंटा में आयोजित जुद्ध की सभा में भाग लेने जन संगठन के नेताओं समेत सारे पुरुष गये थे। सिर्फ लच्छाल का परिवार ही नहीं गया था। (वे पांच भाई हैं)। गांव की जन मिलिशिया के सदस्य भी नहीं गए थे। जो-जो गये थे उन सभी को शिविर में रोक दिया गया। एक सप्ताह बाद महिलायें भी सारे सामान समेटकर अपने बच्चों और बूढ़ों को साथ लेकर शिविर में चली गईं। मंगी और मुत्ती को छोड़कर बाकि सभी जन मिलिशिया सदस्य भी चले गये थे। सभी लोगों के शिविर में जाने के बाद यह एक परिवार गांव में नहीं रह सका। अतः वह नीलममडुगू के ग्रामीणों के पास आकर रहने लगा। लेकिन लच्छाल का भाई कन्ना जब आंध्र जाकर लौट रहा था, उसे पकड़कर कर शिविर में रखा गया। दर्भागूडेम घटना में इसकी मौत हुई। उसे पकड़ने और उसके मारे जाने की खबर तब तक नहीं मिल पाई जब तक कि उसके मारे जाने के एक सप्ताह बाद इस गांव के लोग शिविर से आकर गांव वालों को नहीं बताते। इस तरह यह परिवार अपना गांव छोड़कर, अपने परिचितों को छोड़कर नई जगह पर अपरिचितों के बीच रहने लगा। अपने गांव के साथियों द्वारा सरेंडर करने के बावजूद भी मंगी और मुत्ती जुद्ध के खिलाफ दृढ़ता से लड़ रही हैं। जब इनसे यह पूछा गया कि “जब पूरा गांव चला गया था तो क्या आपको भी जाने का विचार नहीं आया” तो लच्छाल ने जवाब दिया, “कैसे जायेंगे? कैसे विश्वास करेंगे कि यह सरकार हमारे लिये कुछ करने वाली है? किस आधार पर विश्वास करेंगे? जीना-मरना यहीं होगा हमारा।”

इस तरह वह अपने गांव के लोगों के सरेंडर करने से नाराज है। उसने वेदना से भरे स्वर में कहा, “वे सब रहते तो हम अपने गांव में ही रह कर लड़ते। हम इक्के-दुक्के क्या करते? मजबूरी में हमें गांव छोड़ना पड़ा। पराये गांव में आना पड़ा।”

इस तरह जुद्ध मनुष्यों को जहां-तहां बांटते हुये जीवन के एक विकास क्रम को बाधित कर रहा है, जो सामूहिक जीवन और सामाजिक संबंधों के बल बूते आकार ले रहा था। हां, शासक वर्गों के लिये यह जरूरी है कि मनुष्यों के बीच दूरियां बढ़ाई जायें और बाधाये खड़ी कर दी जायें ताकि दुनिया को ग्लोबल बस्ती (विश्व ग्राम) बनाई जा सके।

कानून और प्रसार माध्यम जो जनता के लिये बेमानी हैं

यह अलग से बताने की जरूरत नहीं है कि कानून और प्रसार माध्यम राज्य का ही हितपोषण करते हैं। हालांकि यह भ्रम फैलाने की कोशिश की जाती है कि वे जनता के लिये ही बने हैं। लेकिन दण्डकारण्य में इस प्रकार भ्रम फैलाने की कोशिश भी नहीं दीख रही है।

गेड़ापाड़ दरअसल मुकुमतोम गांव का ही पारा है। यहां 18 घर हुआ करते थे। सभी लोगों ने एहतियात के तौर पर फरवरी महीने में ही गांव को खाली किया था। सामान आदि को सुरक्षित जगहों पर रखा था। गांव से पैदल 20 मिनट की दूरी पर छह झोपड़ियां बनाकर उन्हीं में सिमटकर रहने लगे। जुलाई में इन झोपड़ियों पर जुद्ध ने हमला किया। हालांकि दूर से ही पुलिस वालों को देख सभी दौड़ पड़े, लेकिन माडिवी मूये नामक महिला गोद में बच्ची को लेकर तेजी से दौड़ नहीं सकने के कारण बच्ची सहित पकड़ ली गई। उसका बड़ा बेटा 20 साल का देवाल भी पकड़ा गया। कुंजाम कोसी नामक महिला दौड़ते-दौड़ते गिर पड़ी थी। उठकर फिर भागने की उसकी कोशिश नाकाम हुई और वह

भी जुड़ूमियों के हथ्थे चढ़ गई।

इस तरह चार लोगों को गंवाने के बाद गेड़ापाड़ के ग्रामवासी अपने अस्थाई आवासों को छोड़कर दूसरी जगह चले गये। इस घटना के घटने के तीसरे ही दिन हम उनसे मिले।

“दौड़ते-दौड़ते मेरी बहू गिर पड़ी। ‘यायो-यायो’ (मां-मां) कह कर चिल्ला रही थी और मुझे बुला रही थी। मैं उससे थोड़ा आगे थी। लेकिन कहां रुकती मां? रुकने से मैं भी पकड़ी जाऊंगी समझकर मैं दौड़ती ही रही। इतने में वह पकड़ ली गई” कुंजाम कोसी की सास ने हमें भारी दिल से बताया। अपनी बहू को न बचा पाने की पीड़ा से वह और ज्यादा दुखी लग रही थी।

इस दौरे से पहले और दौरे के दौरान हमने ऐसी कई घटनाओं के बारे में सुना। लेकिन सारी घटनायें कुछ महीनों पहले की थीं। लेकिन तीन दिन पहले ही इस गांव के चार लोगों का पुलिस द्वारा अपहरण किए जाने की इस खबर ने मुझे बुरी तरह झकझोर दिया। उनका क्या हाल कर दिया होगा? पुलिस व जुड़ूमी सेना कितनी यातनाएं दे रही होगी? क्या हम कुछ नहीं कर सकते? क्या हम उन्हें बचा नहीं सकते? बार-बार यही विचार मन में घुमड़ते रहे।

तब मुझे हेबियस कार्पस नामक कानून की याद आई। इस कानून के मुताबिक अदालत यह आदेश दे सकती है कि अपहृत व्यक्तियों को उसके सामने पेश किया जाए। यह कानून खुद ही बताता है कि इस कानून का कोई भी और कभी भी इस्तेमाल कर सकता है। इस कानून के न्याय और अन्याय के पहलुओं को छोड़ भी दें, तो क्या सचमुच इस कानून का इस्तेमाल इस समय किया जा सकता है? चारों तरफ तैनात इस सलवा जुड़ूम की घेराबंदी से बाहर जाकर क्या हम अदालत का दरवाजा खटखटा सकेंगे? अगर जैसे-तैसे बाहर चले भी जाते हैं तो क्या छत्तीसगढ़ का कोई वकील पीड़ितों की तरफ से सलवा जुड़ूम के खिलाफ याचिका दायर करने की हिम्मत कर सकेगा? अगर कोई दायर करता भी है तो क्या बाद में सरकार उसे चैन से जीने देगी? ऐसे कई किस्म के सवाल...

अकेला हेबियस कार्पस ही नहीं, पुलिस के खिलाफ अपहरण का मामला भी दर्ज कर सकते हैं। अवैध तरीके से हिरासत में रखने के जुर्म में पुलिस वालों को अदालत के कटघरे में घसीटा भी जा सकता है। कानून बताते हैं कि ऐसे कई तरीकों से पुलिस को अदालत में घसीटा जा सकता है। लेकिन जब इन कानूनों का इस्तेमाल करने का अधिकार से ही पीड़ित लोग वंचित हैं तो ये कानून कितने बेकार लगने लगते हैं! कई बार मन में उठी यह भावना इस बार और ज्यादा बलवती हुई।

मुझे अखबार भी याद आए। क्या अखबारों के पास कोई इशतेहार भेजा नहीं जा सकता कि इस तरह पुलिस ने फलां गांव के चार लोगों का अपहरण किया और.... विचार तो आया पर तुरन्त ही मन में यह भी आया कि वे भी इसे छापने से इनकार कर सकते हैं। आन्ध्रप्रदेश जैसी जगहों पर अक्सर ऐसी खबरें देखी जा सकती हैं। इन खबरों से तो गिरफ्तार लोगों को बचाया नहीं जा सकेगा, पर कम से कम राज्य की क्रूरता से लोगों को अवगत कराया जा सकता है। लेकिन, यहां पर, इसके बावजूद भी कि इतने अत्याचार, हत्याएं, लापता की घटनाएं, आदि घटती जा रही हैं, क्या एक भी घटना को अखबारों ने कोई जगह दी?

अक्सर अखबारों के मालिक और उनमें काम करने वाले कहा करते हैं कि अखबार जनता का पक्ष लेते हैं, जनता की आवाज को जगह देते हैं और जनता की समस्याओं को प्रकाश में लाते हैं। लेकिन यह बात किसी से नहीं छिपी है कि यह सरासर झूठ है। शासक वर्गों के बीच मौजूद अंतरविरोधों के चलते ही अखबार कभी-कभार कुछ तथ्यों को सामने लाया करते हैं। यहां इस इलाके में ज्यों ही सलवा जुड़ूम शुरू हुआ, सरकार ने सभी प्रचार व प्रसार माध्यमों को अपने कब्जे में ले रखा है। सरकार के आदेश को नजरअंदाज कर स्वतंत्र रूप से काम करना अखबारों के लिए उनके चरित्र के अनुसार ही असंभव है। इसलिए यहां के सारे अखबार सरकार के प्रति पूरी वफादारी दिखा रहे हैं।

चूंकि नक्सल समस्या को लेकर विपक्ष और सत्ता पक्ष में एक राय है, इसलिए सलवा जुड़ूम के अत्याचारों का कहीं भी खुलासा नहीं हो रहा है।

ये चारों अगर जिंदा रहेंगे तो कभी न कभी शिविर से भाग आएंगे। वरना इनका पता कभी भी नहीं लग पाएगा।

न कोई कानून, न ही कोई प्रसार माध्यम इनका पता लगाने में दिलचस्पी दिखाएंगे। ऐसे में जन आंदोलन का ही यह कर्तव्य बनता है कि वह इन्हें अपने इतिहास में जोड़ ले।

सलवा जुडूम को हरा देंगे

पहले मैंने नीलममडुगू के ग्रामीणों के बारे में बताया था जो बादलों की गड़गड़ाहट से डरकर भाग रहे थे। मैंने मुकुमतोम गांव के लोगों के बारे में भी बताया था जो उन चीजों को उठाने से भी कतरा रहे थे जो जलने से बची हुई थीं। लेकिन यह एक पहलू भर है।

डर से छिपने वाले, डर से भागने वाले और डर से आत्मसमर्पण करने वाले लोगों के बीच डटकर लड़ने वाले लोग भी मौजूद हैं। आतंक से डरकर शुरू में छिपने और भागने वाले लोग भी धीरे-धीरे संगठित होकर प्रतिरोध करने लगे हैं। जिन लोगों को जुडूम ने जबरन उठा ले जाकर शिविरों में रखा था वे भी भागकर वापस आ रहे हैं और क्रांतिकारी आंदोलन का हिस्सा बन रहे हैं।

हम वेल्लुम गांव जाते हुए एक गांव में रुक गए थे। हम जहां रुके थे उसके बगल के ही घर की ओर इशारा करते हुए कामरेड कन्नी ने एक बूढ़ी महिला से पूछा, “क्या इस घर में कोई नहीं हैं?” उस बूढ़ी महिला ने बताया कि उस घर का पुरुष खेत जोतने गया और महिला पहरेदारी (संतरी) पर गई। कन्नी ने फिर पूछा, “उसकी अभी-अभी तो जचगी हुई थी, फिर भी संतरी पर गई?” जवाब में बूढ़ी महिला ने कहा, “हां, गई है”।

“उसको बच्ची हुए शायद एक सप्ताह भी नहीं हुआ। इतना जल्द ही वह संतरी पर गई देखो” कन्नी ने कहा मुझसे। वह आश्चर्य से अभी भी बाहर नहीं आ पा रही थी।

मेरे लिए तो यह स्तब्ध कर देने वाला आश्चर्य था। “एक हफ्ता भी नहीं हुआ?” दोहराकर पूछा मैंने क्योंकि अभी भी मुझे यकीन नहीं हो पा रहा था।

बाद में 11 बजे के आसपास वह महिला अपने नवजात शिशु को गोद में लेकर संतरी की चौकी से हड़बड़ाते हुए लौट आई।

मेरे इस प्रश्न पर कि “क्या संतरी खत्म हुई”, उसने जवाब दिया, “नहीं, गुड़िया को नहलाने आई हूं। फिर जल्दी से वापस जाना है।”

कन्नी ने मुझे समझाया कि जो लोग सुबह संतरी पर जाते हैं, उनकी टीम शाम को ही चौकी से वापस लौटती है। आनन-फानन में अपनी बच्ची को नहला रही उस महिला के करीब जाकर मैंने पूछा “बच्ची को पैदा हुए कितने दिन हुए?”

उसने बताया कि ठीक एक सप्ताह हुआ है।

“इतनी नन्ही सी बच्ची को लेकर संतरी पर क्यों गई हो?” यह पूछने पर उसने बताया, “चूंकि यह खेती का सीजन है और जुडूम का हमला भी जारी है, इसलिए हम सभी को सभी कामों में, खासकर सुरक्षा के कामों में भाग लेना ही पड़ेगा।”

मुझसे बात करते-करते ही बच्ची को नहलाकर दस मिनटों के अंदर फिर से तैयार होकर संतरी की चौकी पर जा रही उस महिला को देखकर मुझे खयाल आया कि पता नहीं ऐसी कितनी महिलाएं होंगी जो अपनी पीठ पर नन्हे-मुन्हे बच्चों को बांधकर जुडूम के खिलाफ तीरों से निशाना साध रही होंगी। मुझे लगा, इन लोगों के लिए जुडूम को हरा देना ही फौरी कर्तव्य बन चुका है ताकि वे अपने इन बच्चों को बेहतर भविष्य दे सकें।

मैंने पहले ही लिखा था कि जब हम मुकुमतोम के ग्रामीणों से मिलने जा रहे थे तो हमने संतरियों की सुरक्षा में अपने खेत जोतने वाले लोगों को देखा। इस तरह सभी गांवों में कुछ जमीनें छोड़ दी गईं। हमला होने की स्थिति में प्रतिरोध की तैयारियों के साथ कुछ और जमीनें जोत रहे हैं।

इतना ही नहीं, जन मिलिशिया और जनता मिलकर अलग-अलग जत्थों में बंटकर कई जगहों पर ऐम्बुश करते हुए जुडूम का मुकाबला कर रही है। दूर-दराज के गांवों से भी जन मिलिशिया आई हुई है जो उन गांवों की सुरक्षा का जिम्मा अपने कंधों पर ले चुकी है, जहां पर जुडूम का तुरंत खतरा है। इसलिए अपने दौरे में हमारी मुलाकात कई बार जन मिलिशिया के लोगों से हुई। वे इन गांवों की जनता का मनोबल बढ़ाते हुए उनके साथ मिलकर ऐम्बुश आदि प्रतिरोध की कार्रवाइयों में भाग ले रहे हैं। जन मिलिशिया और जनता के इस प्रतिरोध की बदौलत ही जुडूम के विस्तार पर अंकुश

लगा हुआ है।

इत्तेफाक से 'एराबोर' की घटना भी इसी समय घटी जब हम दौरे में थे। इस कार्रवाई में पीएलजीए के प्रधान और माध्यमिक बलों के सौ लोगों ने भाग लिया, जबकि इसमें भाग लेने वाले जन मिलिशिया और जन संगठनों के सदस्यों की संख्या 600 थी। इस कार्रवाई में 33 लोगों को मार दिया गया। ये सभी एसपीओ या जुडूम में सक्रिय रूप से भाग लेने वाले जन विरोधी तत्व थे। पार्टी की दक्षिण बस्तर डिवीजनल कमिटी ने इस घटना की समीक्षा की कि इसमें दो बच्चे और दो अन्य लोग जो निरपराध थे, गलती से मारे गए। ऐसा नहीं होना चाहिए था। इसके लिए उसने सार्वजनिक माफी मांगी।

सीपीएम नेताओं समेत कई लोगों ने इस कार्रवाई की यह कहकर आलोचना की कि 'नक्सलवादियों ने बेकसूर आदिवासियों पर हमला कर अंधाधुंध हत्याएं की हैं।'

जब मैंने यह बात गोरखा गांव के लोगों के सामने उठाई तो एक ग्रामीण ने गुस्से से फूट पड़ा, "कौन थे आदिवासी? क्या वो आदिवासी थे? अगर आदिवासी थे तो हमारे साथ मिलकर रहना चाहिए था उन्हें। दुश्मन का पल्ला थामने वाले आदिवासी कैसे हो सकते हैं? ऐसे लोगों को मारना ही होगा। इतना क्यों, मैं खुद भी इस हमले में शामिल था। मैंने भी मारा उन्हें।" उसकी बातों से सहमति जताते हुए बाकी लोगों ने भी अपना सिर हिलाया।

इस हमले के बारे में पार्टी की एक कॉमरेड ने मुझे बताया, "पहले तो हमने जन मिलिशिया और जन संगठनों के सदस्यों के सामने यह बात रखी थी कि 'किसी को भी नहीं मारेंगे। सभी को बंदी बनाकर लाएंगे। बाद में उनमें से चुने हुए लोगों को ही मार डालेंगे।' लेकिन उन लोगों ने इसका यह कहकर विरोध किया कि 'वे शिविरों से पुलिस वालों के साथ मिल आकर हम पर जानलेवा हमले कर रहे हैं, हमें मार रहे हैं, पीट रहे हैं और हमारे घरों को जला रहे हैं। फिर भी क्या उन्हें नहीं मारना चाहिए? तो फिर आप ही कर लीजिए यह हमला, हम नहीं आएंगे आपके साथ।' फिर भी पार्टी ने उन्हें समझाया कि जुडूम में सक्रिय रूप से भाग लेने वाले कट्टर जन विरोधियों को ही मारा जाना चाहिए, सभी जुडूमियों को नहीं मारना चाहिए।"

शिविरों में दूधर जिंदगी झेलकर आए हुए लोगों में से कइयों ने इस हमले में भाग लिया। इस हमले में भाग लेने वाले एक कॉमरेड ने मुझे बताया कि उन्होंने लोगों ने इस हमले में ज्यादा जोशोखरोश के साथ भाग लिया। इससे यह समझा जा सकता है कि शिविरों के प्रति और शिविरों में जनता पर अत्याचार करने वाले एसपीओ/गुण्डों के प्रति जनता के दिलों में नफरत किस हद तक भरी हुई है।

सिर्फ इस एक हमले में नहीं, बल्कि जुडूम का पलटकर जवाब देने के लक्ष्य से पार्टी के नेतृत्व में किए जाने वाले प्रत्येक प्रतिरोधी संघर्ष में यहां की जनता सक्रिय भागीदारी कर रही है। यही नहीं, खुद जन मिलिशिया स्वतंत्र रूप से कई प्रतिरोधी कार्रवाइयों को सफलतापूर्वक अंजाम दे रही है। अपने जंगलों, संपदाओं और यहां तक कि अपने अस्तित्व को भी बचाना है तो इनके सामने प्रतिरोध के बिना कोई रास्ता नहीं बचा है। इसीलिए ये लोग अपना सब कुछ दांव पर लगाकर यह प्रतिरोधी लड़ाई लड़ रहे हैं।

इन प्रतिरोधी कार्रवाइयों और उसमें हासिल हो रही कामयाबियों के चलते ऐसे लोगों को भी प्रेरणा मिल रही है और विश्वास मिल रहा है जिन्हें अंतिम जीत पर शंका है। परिणामस्वरूप कुछ और लोग भी कैम्पों से भाग आकर प्रतिरोध में भाग ले रहे हैं।

यहां का प्रतिरोधी संघर्ष न सिर्फ यहां की जनता, बल्कि देश भर की क्रांतिकारी जनता को उत्साहित कर रहा है और अंतिम विजय पर उनके विश्वास को दुगुना कर रहा है।

इस प्रकार देश की समूची क्रांतिकारी जनता को अपने संघर्षों से प्रेरित कर रही यहां की जनता इस ऐतिहासिक सच्चाई को फिर एक बार विमोचित कर रही है कि दमन प्रतिरोध को ही जन्म देता है।

विध्वंस के बीचोबीच पुनर्निर्माण

बाहर के समाज में हम अक्सर ऐसे लोगों को देखते हैं जो अपने घर जल जाने या बाढ़ में बह जाने की बात कहकर हाथ फैलाकर मदद की गुहार लगाते रहते हैं। प्राकृतिक आपदाओं (उनमें अत्यधिक सरकारों द्वारा पैदा की जाती हैं)

के कारण सब कुछ लुट जाने के बावजूद जनता का पुनर्वास करने में सरकारों की लापरवाही के चलते उनके सामने भीख मांगने के अलावा कोई रास्ता ही नहीं रह जाता है।

लेकिन यहां पर जुड़ूम के हमले में सब कुछ गंवाने वाली जनता का इस विध्वंस के बीच ही, इस अफरातफरी के बीच ही, युद्ध के इस क्षेत्र के अंदर ही जिस ढंग से पुनर्वास हो रहा है वह सराहनीय है। अपनी बहुत बड़ी मशीनरी के बावजूद बुर्जुवाई सरकार जनता का कभी पुनर्वास नहीं करती, पर सरकार का हमला झेलते हुए भी यहां की जनताना सरकारें, जो भ्रूण रूप में हैं, जनता का पुनर्वास करने की भरसक कोशिश कर रही हैं।

अपने गांव के जल जाने के बाद अधजले अनाज को गठरी में बांधकर आंध्रप्रदेश पलायन कर जाने वाली नीलममडुगू गांव की माड़के के परिवार की चर्चा मैंने पहले ही की। मैं यह भी बता चुकी हूं कि वहां उन्हें कोई काम नहीं मिला और अनाज भी खत्म होने पर एक हफ्ते के अंदर ही वह परिवार लौट आया। लेकिन खाली हाथ लौटने के बावजूद माड़के का परिवार भूख से नहीं मरा। भीख भी नहीं मांगनी पड़ रही है उन्हें। तो फिर वो कैसे जी रहे हैं?

सब कुछ गंवाने के बाद मुकुमतोम के ग्रामीणों ने मिट्टी की हांडियों में खाना पकाकर पत्तल-दोने में खाया, इसका जिक्र मैंने पहले ही किया। फिर उसके बाद?

नीलममडुगू गांव के जलाए जाने के तुरन्त बाद क्रांतिकारी आंदोलन (पार्टी और जनताना सरकार) ने फौरी मदद के तौर पर चावल, दाल, कपड़े और पैसे मुहैया करवाए। तब माड़के का परिवार आंध्र में था। फिर भी आंध्र से लौटते ही उसके परिवार को भी यह मदद पहुंचाई गई। विध्वंस का शिकार सभी गांवों के पीड़ितों को इस प्रकार की मदद पहुंचाई गई। यहां के क्रांतिकारी आंदोलन ने बुर्जुवाई सरकारों की तरह एक बार कुछ चावल, कुछ पैसे बांटकर रस्म अदायगी नहीं की। फौरी मदद के बाद कई किशतों में कई दफे लोगों की मदद की (शायद कर ही रही होगी)। बाद में टेंट (तंबू), कंबल, बर्तन, खेती के औजार, दवाएं, आदि मुहैया कराईं। जहां तक संभव हो मेडिकल टीमों को इस इलाके में लगातार भेजते हुए जनता को चिकित्सकीय सुविधाएं पहुंचाई जा रही हैं। पुनर्वास का यह पूरा कार्यक्रम एक योजनाबद्ध तरीके से चलाया जा रहा है। इस कार्यक्रम की देखरेख के लिए विशेष कमेटियों का गठन किया जा रहा है।

क्रांतिकारी आंदोलन ने खुद की तरफ से दी गई सहायता के अलावा यहां की जनता, दूसरे इलाकों की जनता और अन्य आंदोलनों से भी सहायता की अपील की। फलस्वरूप यहां पर जो गांव अभी तक जुड़ूम के हमलों का शिकार नहीं हुए हैं वो पीड़ितों की उल्लेखनीय मदद कर रहे हैं। उदाहरण के लिए नीलममडुगू के ग्रामीणों को आसपास के पांच गांवों के लोगों ने खाने की चीजें, बर्तन, कपड़े, पैसे, औजार आदि देकर अपने हिस्से की मदद की। ऐसी मदद हर गांव के लोग कर रहे हैं। इतना ही नहीं, कई गांवों (शायद सभी गांव कहना मुनासिब होगा) के लोग पीड़ितों को पनाह दे रहे हैं। जैसे कि मैं पहले ही बता चुकी हूं, बंडड गांव ने कोत्ताचेरवु गांव के 34 परिवारों को शरण दे रखी है। उन्हें घर दिए, जमीन दी, जोतने के लिए मवेशी दिए। मैंने उनसे यह पूछा कि “क्या इस तरह दूसरे गांव के लोगों की मदद करने से आपकी जमीनें कम नहीं होंगी और इस साल आपकी फसल कम नहीं होगी?” तब सभी लोगों की समवेत प्रतिक्रिया थी, “फिर भी ठीक है। इस कठिन समय का मुकाबला हम सब मिलजुलकर सामूहिक रूप से करेंगे।”

कुछ गांवों में कुछ घर जला दिए गए। वहां जिनके घर नहीं जले वे बाकी लोगों की मदद कर रहे हैं। अत्यधिक गांवों को लोगों ने जुड़ूम के हमलों की आशंका से पहले ही छोड़ दिया और जंगल में रहने लगे हैं। ऐसे में जहां पर जुड़ूम के हमलों की आशंका ज्यादा है, उन जमीनों को छोड़ कर अपेक्षाकृत सुरक्षित माने जाने वाली जमीनों की ही काशत कर रहे हैं। पर इन जमीनों को तेरी-मेरी वाला फर्क छोड़कर सभी मिलजुलकर जोताई कर रहे हैं। हमलों में कुछ लोगों के मवेशी नहीं बचे हुए तो कुछ लोगों के कुछ बचे हुए हैं। जो बचे हैं उन्हीं मवेशियों से सब मिलकर जोत रहे हैं।

बाहरी समाज में सब कुछ गंवाने पर हाथ फैलाकर मदद मांगने से भी मदद की बनिस्बत दुत्कार ही ज्यादा मिलती है। लेकिन यहां की जनता पीड़ितों की जिस प्रकार मदद कर रही है वह अपने आपमें स्फूर्तिदायक है। आदिवासी संस्कृति में मौजूद सामूहिकता की भावना से क्रांतिकारी आंदोलन द्वारा दी जा रही कम्युनिस्ट चेतना के जुड़ने से यह सौहार्दपूर्ण माहौल संभव हुआ।

अन्य इलाकों के आंदोलनों के माध्यम से भी पीड़ितों की सहायता करने की कोशिशें की जा रही हैं। जनता को बेघरबार करने वाली सरकार जनता के इस पुनर्वास को रोकने के लिए तीव्र दमन का प्रयोग कर रही है ताकि बाहर से कोई मदद नहीं मिल सके। अगर यह दमन नहीं रहता तो निश्चित रूप से यह पुनर्वास कार्यक्रम और ज्यादा बेहतर और व्यापक हो सकता था।

किसी पर भी कोई आपदा आए तो उसका सामूहिक रूप से मुकाबला किया जाए, यह चेतना सिर्फ उसी समाज में संभव होगा जिसमें निजी संपत्ति का अस्तित्व न हो। ऐसे समाज को, परिपूर्णता में न सही, हम अभी देख सकते हैं।

ये गांव फिर से सांस लेने लगेंगे

जब हम चिंतागुफा गांव के नजदीक गुप्त रूप से बनाई गई झोंपड़ियों के बीच घूम रहे थे तब एक झोंपड़ी में मेरी मुलाकात कोयानेंद्रा गांव के लोगों से हुई। तब तक मुझे मालूम ही नहीं था कि कोयानेंद्रा गांव भी जुड़ूम के हाथों तबाह हो चुका था और कोयानेंद्रा के लोग भी तितर-बितर हो चुके हैं।

मैंने दो-तीन बार पूछा, “क्या कोयानेंद्रा को भी जलाया गया?”

मेरी बातों में दर्द को तो सभी ने समझा होगा पर किसी को यह समझ में नहीं आया कि उस दर्द में खास बात क्या है।

मेरी नजर में कोयानेंद्रा गांव की खासी अहमियत है। मैं इसके पहले दण्डकारण्य के कई गांवों के नाम सुन चुकी हूँ। लेकिन एक भी गांव का नाम मुझे याद नहीं रहा। मेरे दिमाग में सबसे पहले एक ही गांव का नाम बैठ गया, वह है कोयानेंद्रा। पिछली बार मैं जब दण्डकारण्य आई थी तब हमारा अपार्टमेंट कोयानेंद्रा गांव में ही था। तीन दिन चलकर थकावट भरे सफर के बाद हम कोयानेंद्रा पहुंचे थे। जिस व्यक्ति से मिलना तय था उससे मिले थे। उसने हमें थोड़ी देर बैठने को कहा और वहां से चले गए। मैं बुरी तरह थक चुकी थी। वहां अलाव के बगल में बिछाई खाट पर बैठ गई। पास आए कुछ ग्रामीणों से हाथ मिलाई और उनके नाम पूछी। थकावट के चलते उससे ज्यादा कुछ भी बात कर पाने का धैर्य मुझमें नहीं था। यूँ ही खाट पर लेट गई। अगली ही पल मैं गहरी नींद में चली गई थी। शायद आधा घण्टे बाद जब तक हमारी टीम के साथी जाने की बात कहकर मुझे नहीं जगाते तब तक मेरी नींद नहीं खुल पाई। कितनी सुकून सी नींद थी! इसका खयाल किए बगैर ही कि वह मेरे लिए नया गांव था और मेरे इर्द-गिर्द मौजूद सभी लोग नए थे, मैं कितनी बेसुध हो सो गई थी! मुझे लगा कि मुझ थकी हुई को उस गांव ने अपनी गोद में लेकर सहलाया। बाद में दस मिनट तक चलकर हम कैम्प पहुंच गए थे।

वहां लगभग 30-40 कॉमरेडों ने हमसे हाथ मिलाए। दण्डकारण्य के इतने सारे कॉमरेडों से मैं पहली बार उसी गांव में मिल रही थी। चूँकि जोर से भूख लग रही थी इसलिए हम फौरन ही रसोई की ओर बढ़े। रसोई के पास मौजूद पानी से भरे करीब 40-50 घड़ों पर मेरी नजर गई। उन घड़ों ने मुझे उस गांव के लोगों के सहयोग के बारे में अवगत कराया। मैंने उनसे जब यह पूछा कि ‘पानी कहां से ला रहे हैं’ तो पता चला कि गांव में मौजूद नलकूप से गांव के लोग खुद ला रहे हैं। मेरे आश्चर्य की सीमा नहीं रह गई, “क्या इतने बड़े कैम्प के लिए पर्याप्त पानी जनता खुद ला रही है!”

उस रात गर्मागर्म खाना खाकर मैं अलाव के बगल में ही निश्चित होकर सो गई।

अगले दिन उस गांव के लोगों को कावड़ में पानी लाते हुए, सब्जियां लाते हुए मैं देख ही रही थी। उसी गांव में कॉमरेड गौतम ने मुझे विस्तार से बताया कि पश्चिम बस्तर में सलवा जुड़ूम का आतंक कितना भयानक रूप से चल रहा है। सलवा जुड़ूम के भीभत्सकाण्ड के बारे में मैं पहली बार सुन रही थी वहां।

उसी दिन शाम को मेरे साथ आए टीम के बाकी सदस्य वापस चले गए और मैं एक दूसरी टीम के साथ होकर अपने गंतव्य की ओर निकल पड़ी। हमारा बहुत सारा सामान कोयानेंद्रा के ग्रामीण ढोते हुए दूसरे गांव तक आए थे। इस प्रकार मुझे कोयानेंद्रा ने समझा दिया कि दण्डकारण्य में जनता का सहयोग कैसा रहता है।

इस तरह मुझे पहली बार अपनी गोद में लेने वाला गांव के रूप में कोयानेंद्रा मेरे जेहन में छप गया। अब यह सुनकर मैं गहरे तक हिल गई कि वह गांव अब गांव नहीं रहा, वह मुर्दा सा राख के ढेर में तब्दील हो गया। इतने दुख में

भी जिस एक चीज ने मुझे सुकून पहुंचाया, वह यह है कि उस गांव का एक भी व्यक्ति जुड़ूम में शामिल नहीं हुआ।

उस दिन मुझे लगा कि क्रांतिकारी आंदोलन को अपने दिल में पनाह देने वाले ऐसे न जाने कितने गांवों को जुड़ूम ने तहस-नहस कर दिया होगा। गांवों को जलाने या ढहाने से भी जनता क्रांतिकारी आंदोलन की तरफ ही खड़ी हुई है। ऐसी जनता इन गांवों में जरूर फिर से जान फूंकेंगी। इन गांवों को फिर से खड़ा कर देगी।

हां, ये गांव फिर से सांस लेने लगेंगे। दुश्मन के लिए मौत के आंगन बनकर रहेंगे। मुक्त क्षेत्र के अंदर हमारा स्वागत करेंगे। इतनी तबाही के बीच भी यह जनता भविष्य के प्रति बड़ी उम्मीदें जगा रही है। बेहद आत्मविश्वास के साथ तमाम देशवासियों का उस इतिहास का हिस्सा बनने का आह्वान कर रही है जिसका वह खुद निर्माण कर रही है। उस आह्वान को स्वीकारना ही आज समूचे देशवासियों का कर्तव्य है।

